महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६१ **अंक** : १९
दयानन्दाब्द: १९५
विक्रम संवत्: आश्विन शुक्ल २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

अक्टूबर प्रथम २०१९

अनुक्रम

०१. फिर ध्वस्त हो गई आर्यों को...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-३८	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. वेद और विकासवाद	पं. यशःपाल	१०
०४. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	१५
०५. ब्रह्मयज्ञ: एक सरल परिचय	रामनिवास गुणग्राहक	१७
०६. परोपकार के पर्याय- आचार्य...	वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'	२१
०७. शङ्का समाधान- ५६	डॉ. वेदपाल	२३
०८. संस्था - समाचार	ब्र. प्रताप आर्य	२३
०९. संस्था की ओर से...		२४
१०. १३६ वाँ ऋषि बलिदान समारोह		२७
११. वेदगोष्ठी-२०१९		२८
१२. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	३०

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

फिर ध्वस्त हो गई आर्यों को विदेशी मानने की मिथ्या धारणा

जन-सामान्य में एक कहावत प्रसिद्ध है कि '**झूठ के पैर नहीं होते। एक समय वह लड़खड़ाकर उलटे मुँह अवश्य गिरती है।**' अंग्रेजों द्वारा कपोलकल्पित और उनके समर्थकों द्वारा प्रचारित-प्रसारित यह झूठ कि 'आर्यजन विदेशी हैं, और वे विदेश अर्थात् मध्य एशिया आदि क्षेत्रों से आकर, भारत में मूल रूप से बसे लोगों को दक्षिण की ओर खदेड़ कर, उत्तर भारत पर अधिकार करके यहाँ के निवासी और शासक बन गये', आज लड़खड़ाकर एक बार फिर उलटे मुँह गिर गई है। हरियाणा प्रान्त के जिला हिसार के अन्तर्गत स्थित '**राखी गढ़ी**' नामक गाँव के खण्डहरों के उत्खनन से प्राप्त निष्कर्षों ने उक्त धारणा को ध्वस्त कर दिया है तथा पुरातात्विक प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि 'आर्य भारत के मूल निवासी हैं। **आर्यों में आर्य-द्रविड़ का कोई भेद कभी नहीं रहा और न किन्हीं निवासियों को पराजित करने का कोई साक्ष्य है। सभी भारतीयों के मूल वंशज एक हैं, यह जीन परीक्षण तकनीक ने भी प्रमाणित कर दिया है और उत्खनन में प्राप्त यज्ञशालाओं और हवनकुण्ड ने सिद्ध कर दिया है।**'

भारत में आने के बाद, अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों को विदेशी सिद्ध करने के लिए तथा यहाँ के समाज में '**फूट डालो**' की नीति से विघटन-मतभेद उत्पन्न करने के लिए पुरातात्विक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, भौगोलिक, राजनीतिक, कूटनीतिक आदि सभी प्रकार षड्यन्त्र प्रयोग में लाये गये। कथित अंग्रेज इतिहासकारों ने सभी देशों के परम्परागत प्राप्त इतिहासों की धृष्टता के साथ उपेक्षा कर नये कालखण्ड और उनके नामकरण, जैसे- सिन्धु सभ्यता, हड़प्पा सभ्यता, पाषाणकाल, ताम्रयुगीन आदि निर्धारित किये। पुरातत्त्व पर आधारित एक उत्खनन सिन्ध (पाकिस्तान) में पहले-पहले हुआ तो उसको कहा गया कि यह '**सिन्धु सभ्यता**' थी। इसके निर्माता आर्य नहीं, द्रविड़ थे। अतः द्रविड़ भारत के मूलनिवासी थे। मध्य एशिया से आर्य आक्रमणकारी के रूप में आये और द्रविड़ों पर आक्रमण करके उन्हें उत्तर भारत से दक्षिण की ओर भगा दिया तथा यहाँ स्वयं शासक बन गये। बाद में कथित सिन्धु और हड़प्पा सभ्यता के नगर और चिह्न सारे पश्चिम, उत्तर और दक्षिण भारत तक मिल गये, किन्तु इन इतिहासकारों ने अपनी धारणाओं में संशोधन नहीं किया। आज तक वही झूठा इतिहास भारत के विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है। यह भारत का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

इस विकृत इतिहास की रूपरेखा को रचने का षड्यन्त्र-केन्द्र मूलतः ब्रिटेन का '**ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय**' था। इसके षड्यन्त्रकार लार्ड बेबिंगटन मैकॉले, मैक्समूलर आदि थे। उन्होंने भारत के धनाढ्य परिवारों के छात्रों को वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आकर्षित किया और उनको वही पढ़ाया जो उनके षड्यन्त्र के अनुकूल था। इतिहास के इस विकृतीकरण में सबसे अधिक रुचि श्री जवाहरलाल नेहरू ने ली। उन्होंने वहाँ जो पढ़ा था उसे भारत में आकर स्पंज की तरह उगल दिया। प्रधानमन्त्री पद पर आसीन होने के कारण उनके द्वारा कल्पित इतिहास का ही पठन-पाठन होने लगा। उनके विचारों को आगे बढ़ाने के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति-सभ्यता के स्वभावतः विरोधी अंग्रेजीदां एवं वामपन्थी इतिहासकार श्री रामचन्द्र गुहा, डॉ. रोमिला थापर, इरफान हबीब, डी.डी. कोशांबी आदि जुट गये। आज उसी विकृत इतिहास से शिक्षित-दीक्षित संस्कारित भारतीय अपने गौरवशाली इतिहास को भूल चुके हैं। सत्य इतिहास '**असत्य**' कहा जाने लगा है और असत्य इतिहास '**सत्य**' कहा जा रहा है। भारतीयों ने ऐसा विकृत इतिहास पढ़ा कि आज वे अपने अशिक्षित होने, पिछड़े होने, मूर्ख-असभ्य होने, एक-दूसरे के विरोधी होने का ढिंढोरा खुद ही और बड़े गर्व के साथ पीटते हैं।

यद्यपि इतिहास के इस विकृतीकरण का तत्कालीन कुछ तटस्थ यूरोपियन और भारतीय इतिहासकारों ने विरोध किया था, किन्तु अंग्रेजी शासन की कूटनीति से जुड़े इतिहास-लेखकों के समक्ष उनकी आवाज 'नक्कार खाने में तूती की आवाज' बनकर दब गई। प्राचीन भारत का सारा इतिहास संस्कृत भाषा में है। कथित इतिहासकार और पुरातत्त्वविद् स्वयं संस्कृत नहीं जानते थे। विडम्बना देखिए कि उन्होंने

संस्कृत-कालीन भारतीयों का इतिहास लिख दिया और उसे प्रामाणिक रूप में प्रतिष्ठित भी करा लिया। ''**पाणिनि: हिज प्लेस इन संस्कृत लिटरेचर**'' नामक पुस्तक के लेखक प्रो. गोल्डस्टुकर ने भारतीय इतिहास का विकृतीकरण करने वाले लेखकों रुडल्फ रॉथ, अल्बर्ट वैबर, ह्विटलिंग और कूहन आदि से इस विकृतीकरण का कारण पूछा था। तब कूहन ने आश्चर्यजनक यह उत्तर दिया था कि ''**इसके कारण रहस्यमय हैं**,'' (विवरण द्रष्टव्य पुस्तक के अन्तिम अध्याय में)। पाठक इन रहस्यमय कारणों को आज भलीभांति समझ सकते हैं। उसके दो कारण प्रमुख थे- १. भारतीयों को दीन-हीन, पिछड़ा, अशिक्षित, विघटित सिद्ध करके शासन को चिरस्थायी बनाये रखने की योजना। २. यदि भारतीय यह कहें कि अंग्रेज विदेशी आक्रमणकारी हैं, अत: उन्हें भारत का शासन छोड़कर चला जाना चाहिए, तो अंग्रेज भी यह तर्क दे सकें कि आर्य भी विदेशी आक्रमणकारी शासक हैं। वे जब इस देश के अधिवासी और शासक बने रह सकते हैं तो हम क्यों नहीं रह सकते? भारत के स्वाभिमानी जन इस बात को नोट करें कि यही तर्क एक वरिष्ठ सांसद ने भारत की लोकसभा में प्रस्तुत किया था जिसे अन्य सांसदों के विरोध के कारण रिकॉर्ड से निकालना पड़ा। भारतीय संस्कृति-सभ्यता-विरोधी विचारधारा के व्यक्तियों द्वारा व्यवहार में यह तर्क बार-बार दिया जाता है।

ऊपर वर्णित '**राखी गढ़ी**' के प्राचीन खण्डहरों के पुरातात्विक उत्खनन की रिपोर्ट ५ सितम्बर २०१९ को साइंटिफिक जरनल '**सैल अंडर द टाइटल** में' डी.एन.ए. के सन्दर्भ में प्रकाशित हुई है। उसने अंग्रेजों, अंग्रेजीदां लोगों और कम्युनिस्टों द्वारा कपोलकल्पित और दुष्प्रचारित प्राचीन भारतीय इतिहास की कूटनीति और योजना का पर्दाफाश कर दिया है। रिपोर्ट के अनुसार, '**राखी गढ़ी**' सरस्वती नदी के तट पर स्थित विशाल नगर था। जो कथित हड़प्पा-सभ्यता कालीन है और बारह हजार वर्ष से प्राचीन है। यहाँ के मूल निवासी आर्य थे। उत्खनन में तत्कालीन बर्तन आदि के अतिरिक्त यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञाग्नि के अवशेष भी मिले हैं। नर और नारी के दो कंकाल भी मिले हैं जिनके जीन्स आर्यवंशियों के जीन्स से मिलते हैं। उन पर क्षत-विक्षत किये जाने का कोई चिह्न नहीं है। इसका अर्थ यह है कि आर्यजन भारत में आक्रमणकारी के रूप में नहीं आये अपितु आरम्भ से ही निवास कर रहे थे। आर्य-द्रविड़ का कोई भेद नहीं मिला। अफगानिस्तान से

लेकर अंडमान तक सबका एक ही डी.एन.ए. है। सबके पूर्वज एक हैं। यह खुदाई भारत के पुरातत्त्वविद् प्रोफेसर बसन्त शिंदे और डॉ. नीरज रॉय आदि की टीम के नेतृत्व में हुई है। इस शोध को नाम दिया है- ''एन एनशिएंट हड़प्पन जीनोम लैक्स एन्सेस्ट्री फ्रॉम स्टैप पैस्टरलिस्ट्स ऑर ईरानियन फार्मर्स'' (An Ancient Harappan Genome lacks Ancestry from Steppe Pastoralists or Indian Farmers)

यही बातें भारतीय इतिहास और साहित्य परम्परा में ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर आधुनिक ग्रन्थों तक मिलती हैं, किन्तु भ्रामक जानकारी देने वाले इतिहासकारों ने उस सारी परम्परा की उपेक्षा करके एक कल्पित इतिहास पाठकों के समक्ष परोसा। इस देश के परम्परागत इतिहास को बड़ी ही धृष्टता के साथ नकारा। उपलब्ध वंश-परम्परा का भी तिरस्कार किया। इतना ही नहीं भारत के इतिहास की प्राचीनता को प्रमाणित करने वाले ईरानी इतिहास एवं साहित्य के प्रमाणों को भी तिरस्कृत किया। सैंकड़ों ऐसे प्रमाण हैं जो इन अहंकारी और भ्रामक इतिहास-लेखकों द्वारा आज तक अनुत्तरित हैं। कुछ पर यहाँ भी दृष्टिपात करते हैं-

१. यदि आर्यों ने आक्रमण करके इस देश के किन्हीं मूल लोगों पर विजय पाई होती, तो कहीं-न-कहीं आर्य साहित्य में उस विजय का गर्व के साथ उल्लेख मिलता, जैसे देवासुर संग्राम, रामायण, महाभारत और अर्वाचीन युद्धों की विजय का उल्लेख है। किसी भी साहित्य में कथित मूल निवासियों से युद्धों का उल्लेख नहीं है। जितने युद्ध हुए हैं वे आर्यों के मध्य परस्पर हुए हैं। अत: आर्यों का मूल निवासियों पर आक्रमण मिथ्या-कल्पित है।

२. किसी साहित्य में यह उल्लेख नहीं है कि आर्य कहीं बाहर से आये हैं। अपितु उनके भारत में उत्पन्न होने के उल्लेख हैं, वंश-परम्परा है।

३. इतिहास में प्राचीन भारत के '**आर्यावर्त**', '**अजनाभवर्ष**', '**भारत**' नाम मिलते हैं। यदि यहाँ कोई पहले मूल-निवासी होते तो अवश्य इस देश का पहले कोई

नाम होता। नाम का न होना यह सिद्ध करता है कि यहाँ आर्यों से पहले किसी का निवास नहीं था। इस देश का प्रारम्भिक इतिहास एवं भूगोल स्पष्टत: आर्यों से समबद्ध मिलता है। **'जम्बूद्वीप'** और उसमें स्थित **'भरत-खण्ड'** की सीमाएँ भी स्पष्टत: उल्लिखित हैं। यहाँ का सर्वप्रथम राजा मनु स्वायम्भुव हुआ। उसके वंशज ऋषभ के पुत्र चक्रवर्ती राजा भरत के नाम पर आदिकाल में इस देश का नाम 'भारत' रखा गया (स्कन्ध पुराण अ. ३७, विष्णु पुराण २.१.३१-३२, भागवत. ५.४.९- **''येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति''**)

४. रामायण में दशरथ के चक्रवर्ती साम्राज्य का वर्णन है। एक भावपूर्ण उद्‌गार में श्रीराम भारतभूमि को स्वर्ग से भी प्रिय अपनी मातृभूमि बतलाते हैं। विजय के पश्चात् स्वर्णमयी श्रीलंका के प्रवास से लौटने के लिए आतुर श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं-

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।। (रामायण की कुछ पांडुलिपियों में उल्लिखित)

५. महाभारत में भारत की चर्चा करते हुए बताया है कि यह देश मनु वैवस्वत, इन्द्र, पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, मान्धाता, नहुष, ऋषभ, विश्वामित्र, दिलीप आदि राजाओं का प्रिय देश है-

''सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।'' (भीष्मपर्व ९.५-९)

अर्थात्- आदिकाल से लेकर सभी राजाओं का भारत प्रिय देश है। ऐसे उद्‌गार अपने मूल देश के प्रति ही व्यक्त होते हैं, दूसरे देश के प्रति नहीं।

६. जैसे ईसाइयों और मुसलमानों को अपने मूल देश के तीर्थ स्थानों के प्रति आकर्षण उनको वहाँ का मूल निवासी संकेतित करता है, उसी प्रकार भारतीयों के सभी तीर्थ और ऐतिहासिक स्थल भारत में होने से भारतीय आर्य भारत के मूल-निवासी सिद्ध होते हैं। यदि आर्यों का कोई अन्य मूल देश होता तो वे भी उसी देश में जाकर अपने तीर्थों का अवलोकन करते, जैसे मुसलमान, मक्का, मदीना में और ईसाई इजराइल में जाकर कृतकृत्यता अनुभव करते हैं।

७. इस देश में आक्रमणकारी के रूप में शक, कुषाण, हूण, यूनानी, पुर्तगाली, पठान, मुसलमान आये। यूनानी सम्राट् सेल्यूकस के राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगस्थनीज़ आया। यूनान, रोम, ईरान, चीन, तिब्बत आदि देशों से तीन दर्जन से भी अधिक लोग भारत आये। शोधार्थी यात्री के रूप में फाह्यान, हेरोडोटस, ह्वेनसांग, इत्सिंग, अरब यात्री इब्न बत्तूता, इब्न खुर्दाद्‌व आदि आये। किसी ने नहीं कहा कि यहाँ के निवासी भारतीय आर्य बाहर से आये थे। उन्होंने इस देश के भूगोल का वर्णन भी किया है। केवल अंग्रेज लेखकों और ईसाई मिशनरियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए यहाँ के इतिहास को विकृत करने का षड्यन्त्र रचा था।

८. अंग्रेज इतिहासकारों द्वारा आर्यों के मूलस्थान के विषय में दिये गये तर्क भी एक तरह से भारतीय साहित्य में वर्णित मान्यता की पुष्टि करते हैं। **मैक्समूलर** कहते हैं कि आदिकाल में भारतीय, ईरानी, यूरोपियन आर्य मध्य एशिया से स्थानान्तरित हुए। संस्कृत साहित्य में ब्रह्मा आदि ऋषियों और विष्णु, इन्द्र, शिव आदि राजाओं का जन्म और निवास स्थान हिमालय तथा उसके आस-पास का क्षेत्र था जो भारत या जम्बू द्वीप का ही भाग था। एक देश से कहीं प्रव्रजन करना ''बाहर से आना'' नहीं कहलाता, अत: आर्य अपने ही देश में जहाँ चाहा स्थानान्तरित होते रहे। सच्ची बात तो यह है कि यूरोप के लोग भारत से यूरोप गये हैं। इसी कारण उनकी भाषा संस्कृत से विकसित परम्परा में है।

ईसाइयों के धर्मग्रन्थ **'बाइबल' में लिखा है कि 'हम लोग पूर्व से चलकर यहाँ आये और तब सबकी भाषा एक थी'** (जीनिसिस, अध्याय ६)। वह पूर्व भारत है और भाषा संस्कृत है जिनके यथावत् एवं अपभ्रंश शब्द आज भी सारे यूरोप की भाषाओं में मिलते हैं। अंग्रेज लेखकों को अपने धर्मग्रन्थ का कथन तो ईमानदारी से स्वीकार करना चाहिए कि आर्य भारत में बाहर से नहीं आये, अपितु अंग्रेज ही यहाँ से जाकर यूरोप में बसे हैं।

अब भारतीयों को षड्यन्त्रमूलक मिथ्या इतिहास का परित्याग कर देना चाहिए और अपने परम्परागत गौरवशाली इतिहास को प्रस्तुत करके उस पर गर्व की अनुभूति करनी चाहिए।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-३८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

वेद-ज्ञान की चर्चा के इस प्रसंग में हम ऋग्वेद के १० मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। पीछे हमने ६ मन्त्रों में मृत्यु के सम्बन्ध में कुछ बातों को जाना, देखा, समझा। वहाँ सबके साथ सामान्य रूप से जो बात घटित होती है उसकी चर्चा की इस मन्त्र में विशेष रूप से महिलाओं के संबन्ध में वेद का क्या दृष्टिकोण है, वह हमको देखने में आता है। पहले तो हम इसके शब्दों को देखते हैं। **इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु**, यहाँ महिला को सम्बोधित किया गया है, महिला को इंगित किया गया है यह जो महिला है, **अविधवा** अर्थात् इसकी जो सामान्य परिस्थिति है वह विधवा रहने की नहीं है। **सुपत्नी**, इसका जो पद है, प्रतिष्ठा है वह पत्नी की है। **आञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु**, सामान्य रूप से सर्पि का अर्थ घी होता है, लेकिन वैदिक साहित्य में सर्पि का अर्थ 'जल' भी है। कहता है कि जल से सब शुद्ध, पवित्र होने चाहिए। **अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना**, तीन विशेषण हैं और तीनों का अपना-अपना महत्व है। **अनश्रवः** विशेषण भावनात्मक है, मन से सम्बन्ध रखने वाला है। अर्थात् एक महिला का मन दुःखी नहीं होना चाहिए, पीड़ित नहीं होना चाहिए। **अनश्रवः** उसकी आँखों में आँसू नहीं आने चाहिए। **अनमीवा**, शरीर रोग से रहित होना चाहिए और इतना ही नहीं, तीसरा विशेषण दिया, **सुरत्ना** अर्थात् वस्त्राभूषण से अलंकृत होना चाहिए और उनको समाज में, घर में, **अग्रे**- उनको आगे रखकर चलने वाले हम होने चाहिएँ। उनकी बात को महत्त्व मिलना चाहिए, उनको पूछा जाना चाहिए, उनका सम्मान होना चाहिए। इस दृष्टि से यह मन्त्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। **जो आधुनिक लोगों की विचारधारा है कि भारतीय लोग महिलाओं के प्रति अच्छा भाव नहीं रखते थे या महिलाओं को दबाकर रखते थे, महिलाओं को स्वतन्त्रता नहीं देते थे, महिलाओं को विकास का अवसर नहीं देते थे। इन सारे के सारे प्रश्नों का उत्तर इस एक मन्त्र में मिल जाता है।** हमको एक बात समझनी चाहिए, मनुष्य चेतन प्राणी है और समाज में सारे ही मनुष्य चेतन हैं, विचारशील हैं। सबकी अपनी अलग-अलग इच्छायें हैं, अलग-अलग रुचियाँ हैं, अलग-अलग योग्यता है। इन सबमें हम समानता, एकरूपता देखें, यह मुश्किल है, कठिन है। क्योंकि जो जड़ चीज है उसको तो आप अपनी इच्छानुसार बना सकते हैं, इच्छानुसार एक ही स्थान पर रख सकते हैं, जब तक आपकी इच्छा होगी और आप उसे हटायेंगे नहीं, तब तक वह चीज वहीं बनी रहेगी। जड़ वस्तु क्योंकि अपनी इच्छा नहीं रखती, इसलिये आप अपनी इच्छा चला सकते हैं। दूसरी श्रेणी आती है पशु-पक्षियों की, प्राणियों की, वे आपकी इच्छा से चलेंगे नहीं, लेकिन यदि आप उन्हें बलपूर्वक बाँधकर रखेंगे, अपने आधीन रखेंगे तो उनके पास विकल्प भी नहीं है। आपने उनको बाँध दिया है तो वे बँधे हुए बैठे हैं, उनको पिंजरे में डाल दिया है इसलिये वे पिंजरे में बन्द हैं। आपने उनको घरेलु-पालतु बना लिया है, वे पालतु बन गए हैं, किन्तु यह उनका स्वभाव नहीं है। आप यदि उनको खुला छोड़ देंगे तो वे चले जाएँगे। आपने एक बछड़े को बाँध रखा है, जैसे ही वह खुलेगा, चला जाएगा। यह स्थिति पशु के साथ है। लेकिन मनुष्य के साथ...? न तो यह जड़

है, न यह पशु है। इसे बन्धन में डालकर रखना चाहें तो भी बहुत देर नहीं रख सकते और जड़ वस्तु की तरह इसे जहाँ आप रख देना चाहें और वहाँ यह रह जाए, ऐसा भी नहीं हो सकता।

हर मनुष्य, इच्छा, रुचि, योग्यता, परिस्थिति से अलग-अलग है और हमारा जो प्रयत्न है वह यह है कि उनके अन्दर सामञ्जस्य कितना और कैसे बैठेगा। यह जो सामञ्जस्य बिठाने का यत्न है, यह एक आदर्श स्थिति है, जो सदा नहीं रहती, रह भी नहीं सकती। क्योंकि जो वस्तुएँ चलायमान हैं, चंचल हैं उनकी एक स्थिति सदा नहीं बनी रहती और यदि कोई स्थिति हम बनाकर के रखना चाहते हैं तो उसमें हमें बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा और प्रयत्न करने के बाद भी वह निरन्तर बनी रहे, ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिए हमें एक बात समझनी चाहिए कि जब भी हम दो व्यक्तियों के बीच के संबन्धों को जोड़ने का, समझने का यत्न करते हैं तब यह बात हमें याद रहनी चाहिए कि हमारी रुचि, योग्यता, परिस्थिति, ज्ञान सब अलग-अलग है। इन सबके बाद हम कितना सामञ्जस्य रख सकते हैं, यह हमारे यत्न का विषय है। कितना होगा, कितना नहीं होगा, यह आगे की बात है। इसलिए हम यह सोचें कि सदा ऐसा ही हो, यह नहीं हो सकता। यदि कभी अच्छा हो सकता है, तो उसका दूसरा पक्ष है कि बुरा भी हो सकता है, हुआ है।

अच्छा और बुरा बड़े सापेक्ष शब्द हैं। अनुकूल-प्रतिकूल दोनों सापेक्ष हैं। हर चीज, हर समय, हर एक के लिए अनुकूल हो ऐसा सम्भव नहीं होता। हर वस्तु हर एक के लिए प्रतिकूल हो, यह भी संभव नहीं है। तो इन परिस्थितियों के बीच में आदर्श स्थिति बनाने का यत्न करना चाहिए और क्योंकि मनुष्य चेतन है, ज्ञानवान् है, सुख-दु:ख को, हानि-लाभ को जानता, समझता है, तो वह अच्छे के लिए प्रयत्न करेगा। जो लोग नहीं जानते हैं, वे प्रयत्न नहीं करेंगे। जिनका अज्ञान है वे उल्टा प्रयत्न करेंगे। इसलिए इतनी भिन्नता के साथ यह बात होती रहेगी। अत: जो लोग यह समझते हैं कि आज ऐसा है, कल ऐसा था, ऐसा रहा होगा, यह सोच उचित नहीं कहा जा सकता। आदर्श स्थिति क्या होनी चाहिए, यह शास्त्र जरूर बताता है और जो लोग शास्त्र को स्वीकार करते हैं, मानते हैं वे आदर्श स्थिति के लिए प्रयत्नशील होते हैं। प्रयत्न कितने काल तक सफल रहा, कितने काल तक चलता रहा यह अलग विषय है और कोई प्रयत्न सबके लिए समान रूप से चले यह सम्भव नहीं है।

समाज में धर्म भी और अधर्म भी सदा रहे हैं, इसलिए उनके परिणाम सुख और दु:ख भी सदा रहेंगे। अन्तर इतना आता है कि जब धार्मिक लोग बढ़ते हैं तो समाज में सुख की प्रतीति होती है, बड़ी मात्रा में सुख का अनुभव होता है और जब अधर्म का प्रचार-प्रसार अधिक होता है तो दु:ख की मात्रा बढ़ जाती है। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि नितान्त सुख या नितान्त दु:ख हो जाए। अधिकांश में सुख हो सकता है, अधिकांश में दु:ख हो सकता है। यह व्यक्ति के साथ भी हो सकता है, यह परिवार के साथ भी हो सकता है, यह समाज के साथ भी हो सकता है। मनुष्य की चेतना के अनुसार जो परिस्थितियाँ अस्थिर हैं, उनको ध्यान में रखते हुए हमें कोई बात कहनी चाहिए या कोई निर्णय करना चाहिए।

शास्त्र कहता है कि हम सबमें सामञ्जस्य होना चाहिए। कभी किसी के पास ज्ञान अधिक है, किसी के पास कम है। किसी के पास सामर्थ्य अधिक है, किसी के पास न्यून है। किसी के पास साधन बहुत हैं, किसी के पास नहीं हैं, इन सब विषम परिस्थितियों में सर्वोत्तम क्या हो सकता है? सबसे अच्छा क्या किया जा सकता है, इसके लिए प्रयत्न करना ही धर्म है। इस मन्त्र में बताया गया कि उसको अच्छा करने के लिए कितना यत्न करना चाहिए।

जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दू समाज में या प्राचीन भारतीय संस्कृति में महिलाओं के प्रति कुछ भिन्न प्रकार की दृष्टि थी। भिन्न तो थी लेकिन आदर की दृष्टि से भिन्न थी, सम्मान की दृष्टि से भिन्न थी। यहाँ एक अच्छी बात आप याद रखेंगे- आपको यदि भारतीय साहित्य में स्त्री की निन्दा मिलेगी तो वह बाद के समय की है। जो वेद के बाद का, वेद के ज्ञान से रहित समाज का समय है, उस समय की है। वह न तो हमारे लिए आदर्श स्थिति है, न प्रमाण है। वह है, इससे हमारा इनकार नहीं है, उससे निषेध नहीं है, क्योंकि वह परिस्थिति तो समाज में थी और

है। लेकिन वह है, इसलिए अच्छी है, इसलिए मान्य है, इसलिए आदर्श है, यह नहीं कहा जा सकता, यह नहीं सोचा जा सकता। इसलिए उचित क्या है, इसको अलग देखना होगा और व्यवहार में क्या है, उसको अलग देखना होगा। जो व्यवहार में है उसका कारण अलग है, जो उचित है उनके कारण अलग हैं। जैसे वर्तमान में कोई कहे कि यह अनुचित है, तो उसका कारण आप पूरे समाज में, पूरे समाज में ही नहीं पूरे संसार में, जिन देशों से आप परिचित हैं, जिन विचारों से, जिन धर्मों से, जिन मत-मतान्तरों से, जिन सम्प्रदायों से, जिन परम्पराओं से आपका परिचय है, आप सभी परिस्थितियों को देख सकते हैं और आप अनुभव कर सकते हैं। ये जो परिस्थितियाँ हैं, इनको ध्यान में रखकर यदि आप विचार करेंगे तो आपको एक बात पता लगेगी कि ये परिस्थितियाँ मनुष्य के द्वारा कैसे बनायी गयी हैं? ये परिस्थितियाँ किन लोगों ने बनाई हैं? आप इसको देखें तो आप अनुभव करेंगे कि समाज में एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब आदमी जानकार नहीं होता, समझदार नहीं होता, समन्वय, सामञ्जस्य बिठाने की बुद्धि का अभाव होता है, तो ऐसे व्यक्ति जो निर्णय करते हैं और बलपूर्वक करते हैं। जैसे पशुओं में जो निर्णय होता है वह बलपूर्वक होता है। पशु बुद्धिपूर्वक कोई निर्णय नहीं करता। उसके यहाँ क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, बड़े का, छोटे का, बहन का, भाई का कोई संबन्ध नहीं होता। वह अपना लाभ, अपनी सुरक्षा, अपनी चीजों को वह अपने संवेगों से, अपने बल से चलाता है और अपने बल और इन संवेगों के कारण से उसका निर्णय सदा बल से होता है। जो बलवान् है, वह स्वामी बनेगा। कौन किसको मार सकता है, कौन किसको पराजित कर सकता है, इस आधार पर वह श्रेष्ठ कहलाता है। लेकिन मनुष्य के साथ ऐसा नहीं है। मनुष्य बुद्धि से चलता है और बुद्धि से निर्णय करता है, इसलिए उसका निर्णय बलवाला निर्णय नहीं होता और यदि कहीं बलवाला निर्णय है तो उसका एक मतलब होता है कि उसने बुद्धि को तिलाञ्जलि दे दी है, उसने ज्ञान को पीछे धकेल दिया है या ज्ञान से उसका संबन्ध नहीं रहा है। इस ज्ञान के अभाव में वह जो निर्णय कर रहा है, वह निर्णय पशुओं वाला निर्णय है। वह बलपूर्वक उस बात को चलाता है। समाज में बहुत सारे निर्णय जो हम देख रहे हैं, वे निर्णय बुद्धि के नहीं हैं, आदर्श नहीं हैं, ज्ञानपूर्वक लिए गए नहीं हैं। वे बलपूर्वक लिए गए हैं और बलपूर्वक लिए गए निर्णयों में जो हमारी स्वार्थ बुद्धि होती है, अधिकार की प्रवृत्ति होती है, स्वामित्व का भाव होता है, मुख्य हो जाता है और उसके कारण हम बल से, समाज को, व्यक्ति को, परिवार को चलाने का यत्न करते हैं।

समाज में परिस्थिति हम देखते हैं अर्थात् जब हमारे समाज में बलपूर्वक काम होता हुआ आप देखेंगे तो आप यह निश्चित मानिये कि वह शास्त्रोक्त होना सम्भव नहीं है, क्योंकि शास्त्र बुद्धि से चलता है, शास्त्र ज्ञान से चलता है, शास्त्र औचित्य से चलता है, शास्त्र आदर्श से चलता है। लेकिन व्यवहार में आदर्श हो भी सकता है और आदर्श नहीं भी हो सकता है। इसके अन्दर ज्ञान हो सकता है, ज्ञान नहीं भी हो सकता है और स्वाभाविक संबन्ध यह है कि वहाँ स्वार्थ की बात अधिक हो सकती है, अधिकार की प्रवृत्ति अधिक हो सकती है और अपने लाभ के लिए, अपने लाभ को सुरक्षित रखने के लिए दूसरे को हानि पहुँचाने की जो पाशविक प्रवृत्ति है वह भी हमारे अन्दर देखी जा सकती है। यह जो मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है, इसी प्रवृत्ति ने हमें इस ओर प्रेरित किया है। और हमारा जो वर्तमान का समाज है या इससे पीछे का जो समाज है, जिसके लिए हमें दु:ख होता है, खेद होता है, चिन्ता होती है, जिसकी हम निन्दा करते हैं, आलोचना करते हैं, तब हमारी समझ में आती है कि उसके पीछे ज्ञान, आदर्श, शास्त्र, औचित्य नहीं है। उसके पीछे वर्चस्व है। यह बात यदि हम समझेंगे, तो इस मन्त्र को अच्छी तरह से हम समझ सकते हैं।

पूर्व प्रधान, परोपकारिणी सभा

जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ५.४१

ऐतिहासिक कलम से....

वेद और विकासवाद

पं. यश:पाल सिद्धान्तालंकार

यह लेख स्व. श्री यश:पाल जी सिद्धान्तालंकार की पुस्तक 'वैदिक सिद्धान्त' से लिया गया है। पं. सिद्धान्तालंकार जी आचार्य रामदेव (गुरुकुल कांगड़ी) के सुपुत्र थे। उन्हें आचार्य रामदेव जी की सैद्धान्तिक विचारधारा विरासत में मिली। यह लेख उसी विरासत का एक अंश है। यह लेख लोगों के मनोभावों को परिवर्तित कर वेद का प्रकाश फैलाने में सफल होना, ऐसा हमारा विश्वास है। -सम्पादक

पिछले अंक का शेष भाग....

उपर्युक्त उदाहरणों की सत्यता तथा प्रामाणिकता निर्विवाद है। इनके उपस्थित रहते हुए बुद्धि का विकास (Intellectual Evolution) का सिद्धान्त पूर्णतया खण्डित हो जाता है और हम यह मानने पर बाधित हैं कि संसार का इतिहास जातियों के उत्थान तथा पतन का इतिहास है। एकान्त रूप से यह मान लेना कि प्राचीन लोग जंगली थे और धीरे-धीरे उन्नति करते-करते इस अवस्था तक पहुँचे हैं, नितान्त भ्रमपूर्ण है। अधोलिखित उदाहरण से हमारी बात की और भी पुष्टि होती है-

If the history of mankind is upward evolution, why should the Chinese have known of gunpowder and the mariner's compass before the Christian era and lost them again? Why should we see today only the pitiful traces of the splendours of the Moghal Empire in the palaces and tombs of India. Why should the Hindu race have gone backward for 400 years? Why should the very art of manufacture of the enamelled tiles of the Empress Summer Palace in Peking and the method of working the colour into the walls of the Alimanbra at Granada be lost arts which perished with animal moors?

Why should the Egyptians be ignorant of the arts of Astronomy and Mathematics which enabled them to erect the great pyramid of cheops upon the principle of squaring the circle and at the point where it should absorb its shadow at noon-time at the vernal equinox? By what methods in the absence of hydraulic machinery were the gigantic stones lifted into their palaces at Karnak and Palnyra? What caused the loss of the artistic knowledge which produced sum of the marvellous gold and leather work of the Azlex and lost the very knowledge of the location of the wonderful ruined cities of Central America? Surely anyone who is a masonic seeker after truth must recognise that the progress of mankind is really only in certain direction interlaced with retrogressions and decadence in others."

- Mr. Gones Bousin-New Age, November 1921.

अर्थात् यदि मनुष्य जाति का इतिहास केवल उन्नति का इतिहास है तो क्यों चीनियों को ईसा से बहुत पूर्व बारूद तथा ध्रुवदर्शक यन्त्र का ज्ञान था और वे उसे क्यों भूल गये हैं? मुगल साम्राज्य के समय में इतनी सुन्दर इमारतें तथा कब्रें बनाने की कारीगरी का उन्हें कैसे ज्ञान था? मिस्र के लोगों को इतने आलीशान पिरामिड बनाने का तरीका कैसे मालूम था? किन यन्त्रों के द्वारा वे पत्थरों को इतने ऊँचे ले जाते थे? हिन्दू जाति अब इतनी क्यों गिर

गई है? यदि खोज की जाय तो हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि मनुष्य जाति ने कई बातों में उन्नति भी की है, परन्तु बहुत-सी बातों में अवनति हुई है।

उपर्युक्त उद्धरण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि विकास का सिद्धान्त युक्तिसंगत नहीं है और इतिहास भी इस बात की पुष्टि नहीं करता। इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व हम इस बात पर भी प्रकाश डाल देना चाहते हैं कि प्राचीन काल की सभ्यता में सदाचार का बहुत ऊँचा स्थान था। इसी कारण प्राचीन समय में लोगों को जो सुख और शान्ति प्राप्त थी वह आजकल सभ्यता के इस युग में किसी भी देश को प्राप्त नहीं है। स्वार्थ ने संसार में एक प्रकार की कलह तथा अशान्ति पैदा कर दी है। अधोलिखित उद्धरणों के पढ़ने से हम इस परिणाम पर पहुँच जाते हैं कि वर्तमान समय में किसी भी दृष्टि से संसार को पूर्वापेक्षया उन्नत नहीं कहा जा सकता। रामायण में अयोध्या का वर्णन इस रूप में मिलता है-

तस्मिन्पुरवरे दृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः।।
नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्।।
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।।
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक्।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्।।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः।
कश्चिदासीदयोध्यायां न च निर्वृत्तसंकरः।।

उपर्युक्त वर्णन से यह भी भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि रामायण काल में भौतिक तथा नैतिक उन्नति समकक्ष थी और प्रजा में अपूर्व शान्ति का साम्राज्य था। कई लोग शायद यह कहने का साहस करेंगे कि यह वर्णन काल्पनिक है। उन्हें आँख खोलकर विदेशीय यात्रियों द्वारा लिखित भारतीय अवस्था का अध्ययन करना चाहिए। रामायण की बात तो दूर रही, मगध साम्राज्य के समय हमारे देश की नैतिक अवस्था अत्यन्त उन्नत तथा विकसित थी। मैगस्थनीज लिखता है-

"The inhabitants having abundant means of subsistence excel in consequence the ordinary stature and are distinguished by their proud bearing. They are also found to be well-skilled in arts, as might be expected, men who inhale pure air and drink the very finest water. All the Indians are free and not one of them is a slave..... They have no suits about pledges or deposits, nor do they require either seal or witness, but make their deposits and confide each other..... Truth and virtue they hold alike in esteem.....

अर्थात् भारतीय डीलडौल में बड़े शानदार हैं। नाना प्रकार की कलाओं में प्रवीण हैं। मुकद्दमों का रिवाज नहीं। एक-दूसरे के विश्वास पर ही लेन-देन का कार्य चलता है। सत्य तथा धर्म उनके जीवन का सिद्धान्त है।

कई विद्वानों का कथन है कि आत्मा मनुष्य के लिए धमाधर्म विवेक का साधन बन सकती है, परन्तु साधारण मनुष्यों की बात तो दूर रही, बड़े-बड़े विद्वानों की आत्मा भी कई दफा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर पाती। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बड़े-बड़े गम्भीर विद्वान् नेताओं ने कई दफा बड़ी-बड़ी भयानक भूलें की हैं जिनका परिणाम जातियों के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुआ है। मनुष्य की आत्मा पर परिस्थितियों का गहरा असर पड़ता है। एक निरामिषभोजी के गृह में पैदा हुए बच्चे को मांस से स्वाभाविक घृणा होती है और वह मांस खाना पाप समझता है, परन्तु एक मांसाहारी का बालक मांस खाने में पाप नहीं समझता। इसी प्रकार हिंसक, चोर, डाकू इत्यादि की आत्माएँ इतनी कलुषित तथा मलिन हो जाती है कि उनको जघन्य से जघन्य पाप करने में भी संकोच नहीं होता। इसलिये यह स्पष्ट है कि आत्मा धर्माधर्म के निर्णय के लिये अन्तिम निर्णायक नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य की आत्मा पर परिस्थितियों का गहरा प्रभाव

होता है। प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता काण्ट ने एक स्थान पर लिखा है कि–

Feelings which naturally differ in degree, can not furnish a uniform standard of good and evil, nor has any one right to form judgments for others by his own feelings."

अर्थात् दूसरे के अनुभव के आधार पर धर्माधर्म का निर्णय नहीं किया जा सकता।

वेद का काल

वेद के काल के विषय में यूरोपीय विद्वानों ने बहुत पक्षपात से काम लिया है और यहाँ उन्होंने वैदिक सभ्यता को बच्चों का खेल बताया है, वेदों को गडरियों का गीत लिखा है तथा वेद को जंगली लोगों का काव्य लिखा है, परन्तु प्रसन्नता की बात है कि अब पूर्व तथा पश्चिम के विद्वानों की वेद की तरफ रुचि हो रही है और वर्तमान खोज वैदिक काल को बहुत पीछे ले गयी है। हमें निश्चय है कि ज्यो–ज्यों वेद के स्वाध्याय का प्रचार होगा, विद्वान् ऋषि दयानन्द के मत के सामने नतमस्तक होंगे। ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द पर्यन्त सब ऋषियों का यह सिद्धान्त है कि वेद की उत्पत्ति को एक अरब छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नौ सौ छिहत्तर वर्ष हो गये हैं। ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि ''(प्र.) वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये? (प्र.) १९६०८५२९७६। इससे जो अध्यापक विलसन और मैक्समूलर आदि यूरोप खण्डवासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं, किन्तु श्रुति नहीं हैं उनकी यह बात ठीक नहीं और दूसरी यह है कि कोई कहता है कि २४०० वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए, कोई २९००, कोई ३००० और कोई कहता है कि ३१०० वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए बीते हैं, उनकी यह भी बात झूठी है, क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और संकल्प पठन विधि को भी यथावत् न सुना और न विचारा है, नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उनको न होता। इससे यह मानना अवश्य चाहिए कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों की तथा जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं।''

क्या वेद में प्रक्षेप हुआ है?

प्रो. मैक्समूलर कहते हैं कि – As far as we are able to judge at present we can hardly speak of various reading in the Vedic hymns in the usual sense of that world. Various readings to be gathered from a collection of different manuscripts now accessible to us there are none. (Rig Veda Vol. I page XXVII)

अर्थात् वेदों की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, उनके आधार पर यह स्पष्ट है कि वेदों में प्रक्षेप नहीं हुआ। प्रो. मैकडॉनल्ड कहते हैं कि–

"Extraordinary precautions soon began to be taken to guard the canonical text thus fixed against the possibility of any change or loss. The result has been its preservation with a faithfulness unique in literary history. (A History of Sanskrit literature P. 50.)

अर्थात् प्राचीन आर्यों ने वैदिक संहिता की रक्षा अत्यन्त सावधानी से की। इसीलिये वेद के मन्त्रों में काई परिवर्तन नहीं हुआ। साहित्य के इतिहास में यह बात अपूर्व है।

वेद के विषय में पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति

A. Wallace अपनी पुस्तक " Social Environment and Moral Progress" में लिखते हैं कि–

"If we make allowance for the very limited knowledge at this early period, we must admit that the mind which conceived and expressed in appropriate language such ideas as are everywhere apparent in the Vedic hymns, could not have been in any way

inferior to those of the best of our religious teachers and poets.

अर्थात् वेद के मन्त्रों में उच्च ज्ञान निहित है। वह हमारे समय के ऊँचे दर्जे के विद्वानों तथा कवियों के ज्ञान से किसी भी अवस्था में कम नहीं है। Edward Carpanter 'Art of Creation' में लिखते हैं कि–

A new philosophy we can hardly expect or wish for, since indeed the same germinal thoughts of the Vedic authors came all the way down history even to Shopenhauer and Whitman, inspiring philosophy after philosophy and religion and it is only today that science with its huge conquests in the material plains is able to provide for these very old principles somewhat of a new form and so wonderful a garment of illustrations and expression as it does."

अर्थात् संसार में कोई नया ज्ञान नहीं पैदा होता। वैदिक ऋषियों के विचार ही संसार में विकसित हो रहे हैं और वर्तमान काल में भी इन्हीं विचारों का रूपान्तर हो रहा है, न कि नवीन ज्ञान।

M. Louis Jacolliot (मि. जैकोलियट) अपनी Bible in India (बाइबल इन इण्डिया) Ed. 1870 P. 10-12 में लिखते हैं कि–

The Veda is the word of eternal wisdom, the principles as of principles revealed to our fathers- the pure primeval doctrine, the sublime instructions."

अर्थात् वेद परमात्मा का ज्ञान है और इसमें सब विद्याओं के बीज विद्यमान हैं।

पादरी फिलिप अपनी पुस्तक Teachings of the Veda के २३वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि–

"The conclusion, therefore, is inevitable that the development of religious thoughts in India, has been uniformally downward and not upward, deterioration and not evolution. We are justified, therefore, in conducting (until contrary is proved) that the higher and purer conceptions of the Vedic Aryans were results of a primitive divine revelation.

अर्थात् हम अनिवार्यरूपेण इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारत में धार्मिक विचारों की उन्नति नहीं हो रही, अपितु अवनति हो रही है हम निस्सन्देह इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान का ही परिणाम है।

Religion of Modern India की भूमिका में सर चन्दावरकर लिखते हैं कि–

"If India is to avoid the pitfalls of modern civilization and to save her growth in politics from its degradation, it must hitch itself to the cordinal principles of the spiritual life evolved from the Vedas."

अर्थात् यदि भारत अपने आपको वर्तमान सभ्यता की बुराइयों से बचाना चाहता है तो उसे वेद के आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिये।

प्रो. मैक्समूलर The Rigveda Samhita Vol. I. Ed. 1869 preface P. X में लिखते हैं कि "The Veda, I feel convinced, will occupy scholars for centuries to come and will take and maintain forever, as the most ancient of books in the library of mankind.

अर्थात् मैं इस बात को निश्चय से कह सकता हूँ कि वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे पुरानी पुस्तक है।

श्री अरविन्द घोष लिखते हैं कि–

There is nothing fantastical in Dayanand's idea that Veda contains truths of science as well as truths of religion. I will add my own conviction

that Veda contains other truths of science which the modern world does not possess at all. Immediately the character of the Veda is fixed in the same Dayanand gave to it, the merely ritual mythological and polytheistic interpretation of Sayanacharya collapses and the merely naturalistic and materiological interpreation of Europeans also collapses. We have instead, one of the world's several books and the divine world of lofty and noble religions.

अर्थात् स्वामी दयानन्द की धारणा में कि वेद धर्म और पदार्थ विद्या के भण्डार हैं, कोई अयुक्त वा अनहोनी बात नहीं है। मैं उनकी उक्त धारणा में अपना विश्वास और जोड़ना चाहता हूँ कि वेदों में पदार्थ विद्या की अन्य ऐसी सच्चाइयाँ भी हैं जिनको आजकल का संसार यत्किंचित् भी नहीं जान पाया है। एक बार वेदों की स्थिति स्वामी दयानन्द के अभिमतानुसार समासीन हो जाने दो, तो फिर देखोगे कि सायणाचार्य का केवल रुढ़िपरक और कपोलकल्पित सर्वेश्वरवाद पर आश्रित, वेदों के भाष्य का भवन अपने आप गिर जायेगा ओर उसी के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों का केवल भौतिक पदार्थ और प्राकृतिक पूजनपरक भाष्य भी धराशायी हो जायेगा और वेद एक उच्च गौरवास्पद ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक के रूप में हमारे पास शोभायमान होगा।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि क्रमिक विकास का नियम युक्तिसंगत नहीं। इतिहास भी इसके सत्य होने का प्रमाण नहीं देता। जातियों का इतिहास उत्थान तथा पतन का इतिहास है। इसलिये विकासवाद ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता के मार्ग में बाधक नहीं। सृष्टि के आदि में ज्ञान का आदि गुरु परमात्मा है। वह ज्ञान वेद ही है, क्योंकि अन्य सब धर्मों की अर्वाचीनता इतिहास से सिद्ध है।

- 'वैदिक सिद्धान्त' पुस्तक से साभार।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~९००~~/- **छूट पर**- ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- **छूट पर** - ५००/-

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर**- ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टिपात-२

डॉ. रामप्रकाश वर्णी, डी.लिट्

(गताङ्क से आगे)

जैसा कि प्रथम प्रश्न के उत्तर से स्पष्ट किया जा चुका है- **''केवल मन्त्रात्मक चतुर्वेद संहिताएँ'' ही वेद हैं, 'ब्राह्मणादि' मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं।** तदनुसार वे ही स्वत:प्रमाण हैं और वे ही 'ईश्वरीय ज्ञान' भी हैं। इन्हीं को अनादि-अनन्त ब्रह्मराशि भी कहते हैं तथा परम्परा से इन्हें 'अपौरुषेय' मानकर **'अनन्ता वै वेदा:'** के रूप में प्रख्यापित किया जाता है। जबकि 'ब्राह्मण' और 'उपनिषद्-ग्रन्थ' पौरुषेय अर्थात् मनुष्यकृत होने से 'परत:प्रमाण' माने जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यदि ये ग्रन्थ वेदानुकूल हैं तो प्रामाणिक हैं अन्यथा अप्रामाणिक ही ठहरते हैं। इस छोटी सी भूमिका के साथ हम यहाँ सनातनियों के द्वितीय प्रश्न पर विचार करते हैं-

प्रश्न-२- जिस 'ईश्वर' की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की जाती है उसका स्वरूप क्या है?

उत्तर- आर्यसमाज के संस्थापक युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज के द्वितीय-नियम में ईश्वर का स्वरूप भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है। उसे पढ़ लें, यदि उक्त से भी पेट न भरे तो यजुर्वेदसंहिता (शुक्ल-यजुर्वेद माध्यन्दिन-वाजसनेयी सं.) के ४० वें अध्याय के अधोलिखित -आठवें मन्त्र के अर्थ पर विचार करें।

''स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।।''

इस मन्त्र में बड़े ही सरल ढंग से बताया गया है कि वह सच्चिदानन्द ब्रह्म **'शुक्रम्'**=शीघ्रकारी=तेजी से कार्य करने वाला और सर्वशक्तिमान् है। वह **'अकायम्'**= स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूपी तीनों शरीरों से रहित है। क्योंकि उस ईश्वर का कोई भी शरीर नहीं है, इसलिए वह **अव्रणम्**= छिद्ररहित अर्थात् वह कभी भी घायल नहीं होता है और न किसी से काटा ही जा सकता है। इसी भाव को और अधिक मजबूती के साथ **'द्विबद्धं सुबद्धं भवति'** की तरह प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि वह **'अस्नाविरम्'**=शरीर रहित होने से नस-नाड़ियों के संबन्ध रूप बन्धन से रहित है। यहाँ कुछ 'अक्ल-बन्दों' को पुनरुक्तिदोष नजर आता है परन्तु वे यह नहीं जानते हैं कि किसी रहस्यपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करने के लिए किसी शब्द या भाव-रूप वाक्य को कई-कई बार दोहराना दोषपूर्ण न होकर गुण ही माना जाता है। अन्यथा **पुनरुक्तवदाभाष-अलङ्कार** का अस्तित्व ही सङ्कट में पड़ जायेगा। अत: यहाँ भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा एक ही भाव अर्थात् ईश्वर की 'निराकारिता' को बलपूर्वक जोर देकर समझाया गया है। यही दृष्टि उपर्युक्त मन्त्र के अग्रिम विशेषणों में भी कार्य कर रही है। जैसे- शुद्धम्- वह जगन्नियन्ता जगदीश अशरीरी होने से अविद्या आदि दोषों से रहित होने के कारण सदा पवित्र और **'अपापविद्धम्'**= निष्पाप है। वह कभी भी पाप और पापी से प्रीति नहीं करता है। वह **पर्यगात्**= सर्वव्यापक, **'कवि'**= क्रान्तद्रष्टा और **'मनीषी'**= सभी जीवों की मनोवृत्ति का ज्ञाता है। वही **'परिभू:'**= पापियों का तिरस्कार-कर्त्ता है और **'स्वयम्भू'**= अनादिस्वरूप अर्थात् संयोग-विशेष से उत्पन्न और वियोग से नष्ट होने वाला वह ईश्वर नहीं है और न वह माता-पिता के संयोगजन्य गर्भवास वाला है। वह न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। इसीलिए इसे अनादि और अनन्त माना गया है। इस शुक्ल यजुर्वेदीय मन्त्र के महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत उपर्युक्त भाष्य से यह बिल्कुल साफ होता है कि ईश्वर वास्तव में निराकार ही है। वह कभी भी किसी माँ के गर्भ में नहीं आता है और न उसका कभी भी कहीं से अवतरण अर्थात् **'अवतार'** नहीं होता है। फिर भी इन पोपों की लीला तो निराली ही है। **'शिवराज-विजय:'** नामक संस्कृत-उपन्यास का कर्त्ता और महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के **'संस्कृतवाक्यप्रबोध'** नामक लघुग्रन्थ पर अनेक आक्षेप लगानेवाला तथा 'घटिकाशतक' व 'शतावधान' जैसे विरुदों से सुशोभित पं. अम्बिकादत्त अपने उपरिलिखित उपन्यास में ईश्वर की स्तुति में एक गीतिका लिखता हुआ कहता है-

''सखि हे नन्दतनय आगच्छति।'' यही नहीं न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकार ने तो हद ही कर दी। वह बड़ी बेशर्मी के साथ लिखता है-

नूतन-जलधररुचये गोपबधूटीदुकूलचौराय।

तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय।।

देखिये क्या कमाल है, जो संसार रूपी वृक्ष का बीज=कारण है वह चोर है। इसी पर 'नहले पर देहला' जड़ते हुए 'गोपालसहस्र नाम' के रचयिता ने तो कलम ही तोड़ दी है- ''गोपालो कामिनी जारश्चौरजारशिखामणि।'' अब पाठकगण स्वयं ही सोचें जिनका भगवान् चौर है उनके भक्त कैसे होंगे? ये वो पाखण्डी हैं जो कि अश्लील मङ्गलाचरण करते हुए भी नहीं लजाते हैं। उदाहरण के रूप में हम यहाँ 'सुभाषितरत्नभाण्डागार' नामक ग्रन्थ के पार्वती-प्रकरण का एक 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द में निबद्ध श्लोक प्रस्तुत कर रहे हैं- पार्वती का पुत्र उनसे पूछ रहा है-

''मातस् तातजटासु किं सुरसरित्, किं शेखरे? चन्द्रमाः,
किं भाले? हुतभुग् लुठत्युरसि किं? नागाधिपः किं कटौ?
कृतिः, किं जघनद्वयान्तर्गतं यद् दीर्घमालम्बते?
श्रुत्वा पुत्रवचोऽम्बिका स्मितमुखी, लज्जावती पातु वः।।''

अस्तु, अपनी ईश्वर-स्वरूप संबन्धी साकारवादिता की सम्पुष्टि करने के लिए ये वाक्छल करते हुए वेद के नाम से याज्ञवल्क्य कृत 'शतपथ-ब्राह्मण' की एक आदि-अन्त विहीन, बीच से कटी हुई श्रुति प्रस्तुत करते हैं-

''उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्चेत्यादि''

श. ब्रा. १४/१/२/१८

इसके अनुसार वे कहते हैं कि इस वेदमन्त्र के अनुसार प्रजापति= ईश्वर के दो भेद हैं एक 'रूपवान्' अर्थात् 'साकार' जो कि यहाँ निरुक्तः शब्द से बताया गया है और दूसरा रूप है 'अरूप' अर्थात् 'निराकार' जो कि यहाँ 'अनिरुक्त' शब्द से कहा गया है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है- ''ब्राह्मणग्रन्थ'' मनुष्यकृत होने से 'वेद' नहीं है, वे वेदों के व्याख्यान रूप हैं। इनमें शतपथ ब्राह्मण तो निश्चय ही ऋषि याज्ञवल्क्य की रचना है। इस बात को वेद का साधारण पाठक भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी ये छलिया पोप जानबूझ कर वेद के नाम से 'ब्राह्मण' को परोस कर पाठकों की आँखों में मिर्च झोंक रहे हैं। अस्तु।

चलिए यहाँ हम इनकी इस चाल का भी भण्डाफोड़ देते हैं। प्रिय पाठको हम यहाँ आपको ''दूध का दूध और पानी का पानी'' करने के लिए उक्त श्रुति को सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत किये देते हैं ताकि सनद रहे कि ये कितने धोखेबाज हैं।

''प्रजापतिर्वा एष यज्ञो भवति। उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितं रूपं तदस्यैतेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳरूपं तदस्यैतेन संस्करोति सह वाऽएतं सर्वं कृत्स्नं प्रजापतिꣳसंस्करोति यऽ एवं विद्वानेतदेवं करोत्यथोपशयायै पिण्डं परिशिनष्टि प्रायश्चित्तिभ्यः।''

यहाँ पाठकवृन्द् ध्यान दें कि इस शतपथ की श्रुति में प्रयुक्त 'प्रजापतिः' शब्द सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा का वाचक नहीं है। प्रत्युत यह 'यज्ञ' का नाम है। इसका अभिप्राय निम्नलिखित है- ''यह प्रजापति रूप यज्ञ दो प्रकार है। एक रूपवान् और दूसरा अरूप। जो रूपवान् है वह परिमित है और अरूप अपरिमित है।'' जो यज्ञ यजुर्वेद के मन्त्रों से वेदी, पात्र, समिधा और शाकल्य के द्वारा याजकगणों से सम्पादित होता है, वह इस यज्ञ का वर्णन करने योग्य 'परिमित' रूप है और जो उक्त हव्य से संस्कृत हुआ सूक्ष्म धूम्ररूप पर्यावरण-शोधक यज्ञ भूः से लेकर भुवः और स्वः लोक तक फैल चुका होता है, वह इस यज्ञ का अकथनीय 'अपरिमित' रूप है। उसके सम्बन्ध में चुप ही रहना पड़ता है। कारण स्पष्ट है कि स्वर्लोक= आदित्य लोक तक फैल जाने वाले इस धूम्ररूप यज्ञ का भला कौन वर्णन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। इस प्रकार इस विवरण से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत 'शातपथी-श्रुति' में 'यज्ञ' को प्रजापति के रूप में बतलाया गया है और उसी के निरुक्त और अनिरुक्त ये दो रूप हैं। सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के नहीं। वह परमात्मा तो निश्चित ही निराकार है। **शेष अगले अङ्क में।**

ब्रह्मयज्ञः एक सरल परिचय

रामनिवास 'गुणग्राहक'

पञ्च महायज्ञों का हमारी वैदिक संस्कृति में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। **यज्ञ** शब्द आज भी प्रायः अग्निहोत्र के लिए रूढ़ि-सा होकर रह गया है। यज्ञ शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में स्वाहा-स्वाहा का उच्चारण करते हुए प्रज्वलित अग्नि में शाकल्य व घृत की आहुतियाँ डालते हुए स्त्री-पुरुषों का मनोरम चित्र अनायास ही उभर आता है। शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- **एतद्वै यज्ञानां मुखं यदग्निहोत्रम्।** अर्थात् यह जो अग्निहोत्र है यह तो यज्ञों का मुख है। जब अग्निहोत्र यज्ञों का मुख अर्थात् एक अंग है, तो उसके और भी अवयव होने चाहिए। वे अन्य अवयव हैं-ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव-यज्ञ और अतिथि-यज्ञ। काल के कराल थपेड़ों के प्रबल प्रहारों से हमारे इन पाँचों ही यज्ञों का स्वरूप विकृत हो गया था। महर्षि व्यास जैसे तत्त्ववेत्ता को- ''**धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञं न एतद् वेदेषु विद्यते**'' जैसी कर्कश घोषणा करनी पड़ी। योगिराज कृष्ण को भी गीता में अशास्त्रीय यज्ञों को निरर्थक कहना पड़ा। ये विकृतियाँ किसी ठोस प्रतिकार के अभाव में निरन्तर बढ़तीं चली गईं।

दैवानुकम्पा से इस देवभूमि को एक देवपुरुष के जन्म का सौभाग्य मिला। भारत के गुजरात प्रान्त के टंकारा नामक गाँव में एक विलक्षण प्रतिभाशाली शिशु ने जन्म लिया। यही शिशु आगे चलकर महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम से विश्वविख्यात हुआ। विश्व के महामानवों के विशाल मेले में अपनी अनन्य विद्वत्ता, कर्मण्यता, लोकहितैषिता, निडरता और ब्रह्मचर्य एवं ब्रह्माराधनाप्रसूत तेजस्विता से सर्वोच्चता को प्राप्त यह प्रखरपुरुष एक ऐसे युगपुरुष के रूप में जाना जाएगा, जिसने मानव मात्र ही नहीं, प्राणिमात्र के कल्याण के लिए संसार की बड़ी से बड़ी आपत्ति की, घोर कष्टों की तनिक भी चिन्ता नहीं की। युगों से व्याप्त विकृतियों को अपनी घोर गर्जना से कँपा देने, उनकी पाताल तक पहुँची जड़ों को अपने अतुल तपोबल से हिलाकर उखाड़ देने वाले इस वज्राांग पुरुष को कृतज्ञ मानवता अनन्तकाल तक एक ऐसे आत्मबली के रूप में याद करती रहेगी, जिसने प्राणिमात्र के दुःख, दर्द और व्यथा-वेदना को दूर करने के लिए अपनी हर सुख-सुविधा और संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन-आकर्षण को एक तिनके की तरह सहज भाव से त्याग दिया था। इसी ऋषि कल्पपुरुष को यज्ञों के सच्चे स्वरूप को हमारे सामने पुनः प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त है। ऋषि याज्ञवल्क्य की घोषणा ''**यज्ञो वै देवानां आत्मा**'' के अनुसार यज्ञ देवों का आत्मा है। यज्ञशील पुरुष में देवत्व निवास करता है।

जब हमारे यहाँ पञ्चयज्ञों का प्रभूत प्रचलन था, तब इस भारतभूमि को देवभूमि कहते थे। यज्ञीय विकृतियों ने हमारे देवत्व को निष्प्राण बना दिया। देवत्व के निर्बल पड़ते ही असुरत्व छा जाता है। महाशोक!! कि वह ऋषि जिसने असुरत्व से लोहा लेते हुए युगों से सुप्त पड़े मरणासन्न देवत्व को अपनी तपस्या की संजीवनी पिलाकर पुनर्जीवित ही नहीं किया, बल्कि उसके पूर्ण स्वास्थ्य और सबलता के लिए आर्यसमाज रूपी सद्वैद्य को यह महान् उत्तरदायित्व विरासत के रूप में दे गया। आर्यसमाज आज भी अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार मानव-हृदय में सुप्त पड़े देवत्व के प्रबोधन में लगा हुआ है। एक दिन वह अवश्य सफल होगा।

अधूरापन पूर्ण करें- वैदिककाल के जिन वेदवेत्ता ऋषियों ने जिन वेदोक्त यज्ञों का प्रवर्त्तन किया था, उनमें आने वाली विकृतियाँ जनमानस में कितनी गहराई तक उत्तर चुकीं थीं, यह आज भी देखा जा सकता है। यद्यपि देव दयानन्द जी महाराज ने यज्ञों का वैदिक स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया, पुनरपि सामान्य जन में अभी पुरानी स्मृतियाँ ही डेरा डाले हुए हैं। जहाँ तक ब्रह्मयज्ञ का प्रश्न है, उसका आधा अंग अपनाकर ही हम ब्रह्मयज्ञ की पूर्णता मान लेते हैं। यही स्थिति अतिथियज्ञ की है। ऋषि के अनुसार- ''धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारी, विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या की प्राप्ति होना

अतिथियज्ञ कहलाता है।'' हमने अपनी दृष्टि से धार्मिक प्रतीत होने वाले पुरुषों की अन्नादि से सेवा को ही पूर्ण अतिथि-यज्ञ मान लिया। प्रश्नोत्तर का प्रचलन न रहने से उक्त सद्गुणरहित कपटवेशधारी पुरुष भी इसके पात्र बन जाते हैं और यह यज्ञ अपनी यज्ञीय गरिमा खो डालता है। यजुर्वेद में तो यहाँ तक निर्देश है कि हम अतिथि से कौन-कौन से प्रश्न, किस ढंग से पूछें। यही स्थिति ब्रह्मयज्ञ की है। महर्षि दयानन्द जी **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका** के '**पञ्चमहायज्ञ विषय**' नामक प्रकरण में ब्रह्मयज्ञ की परिभाषा बताते हैं- ''**साङ्गानां वेदादि शास्त्राणां सम्यगध्ययनमध्यापनं संध्योपासनं च सर्वैः कर्त्तव्यम्।।**'' भाव यह है कि वेद-शास्त्रों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन-अध्यापन और संध्योपासन सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है। महर्षि दयानन्द जी महाराज का इतना स्पष्ट आदेश होते हुए भी हम प्राय: संध्योपासना को ही जैसे-तैसे करके ब्रह्मयज्ञ को पूर्ण मान लेते हैं। अगर हम ऋषि-विधान पर दृष्टि डालकर देखें तो इसमें और भी अधूरापन सामने आता है। **संस्कार विधि** के **गृहस्थ प्रकरण** में पञ्च महायज्ञों का वर्णन करते हुए ऋषिवर लिखते हैं- ''तत्पश्चात् शौच, दन्तधावन, मुख प्रक्षालन करके स्नान करें। पश्चात् एक कोस वा डेढ़ कोस एकान्त जंगल में जाकर योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना करें। सूर्योदयपर्यन्त अथवा घड़ी आधा घड़ी दिन चढ़े तक घर आ के, सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म नीचे लिखे प्रमाणों यथाविधि उचित समय में किया करें।'' इससे स्पष्ट है कि संध्योपासना भी हमें प्रात:काल में ही दो बार करनी चाहिए, एक बार एकान्त जंगल में योगाभ्यास की रीति से, दूसरी बार घर आकर परिवार के साथ ऋषि प्रदत्त वेद-मन्त्रों के अनुसार।

'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'- संस्कार विधि में गृहस्थों के लिए इस व्यवस्था को देखकर मैं एक लम्बे समय तक गहरे सोच में डूबा रहा कि इस ढंग से दो बार संध्योपासन, वह भी एक बार एकान्त जंगल में दूसरी बार घर में, इसमें क्या रहस्य हो सकता है? मैं एक बार '**मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्**' के वेदादेश की व्याख्या कर रहा था कि अनायास ही मस्तिष्क में ऋषि-प्रज्ञा का चमत्कार कौंधने लगा और इन दोनों में एक अज्ञात-सा सम्बन्ध प्रतीत हुआ, थोड़ा रुककर विचार किया तो लगा कि ऋषि ने इस वेदादेश की व्यावहारिक पूर्ति के लिये यह व्यवस्था दी है। दूर एकान्त में जाकर संध्योपासना के द्वारा हम अपने अन्दर मननशीलता, उचित-अनुचित व धर्माधर्म के विवेक को जागृत करके सच्चे मनुष्य बनें (**यो मननात् स मनुष्यः, धर्मो हि एको अधिको विशेषः**) और घर आकर परिवार के साथ संध्या-विधि के द्वारा हम स्व-सन्तान में देवत्व के गुण विकसित कर सकें। यह हम पूर्व में प्रकट कर चुके हैं कि ऋषि याज्ञवल्क्य यज्ञों को देवों का आत्मा बताते हैं। यज्ञों का सश्रद्ध व निरन्तर अनुष्ठान हमारे अन्दर मानवीय गुणों व सोये हुए देवत्व को जगाता और परिपुष्ट करता है।

स्वाध्याय का साहचर्य क्यों?- हम देख चुके हैं कि महर्षि दयानन्द जी महाराज सांगोपांग स्वाध्याय एवं संध्योपासना को मिलाकर ब्रह्मयज्ञ का नाम देते हैं। ब्रह्मयज्ञ में स्वाध्याय का कितना महत्त्व है, इसका पता इसी से लग जाता है कि ऋषियों ने इसका एक अपर नाम ऋषि-यज्ञ भी रखा है। महर्षि मनु के '**स्वाध्यायेन अर्चयेद् ऋषीन्**' (३.८१) वचनानुसार स्वाध्याय को ऋषि-तर्पण कहा गया है और इसी ऋषि-तर्पण के कारण ब्रह्मयज्ञ को ऋषियज्ञ नाम दिया गया है। योगदर्शन के प्रणेता ऋषिवर पतञ्जलि जी महाराज स्वाध्याय के महत्त्व पर एक सूत्र रचते हैं- '**स्वाध्याय प्रतिष्ठायां इष्ट देवता सम्प्रयोगः**' इसकी व्याख्या ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं- 'स्वाध्याय से इष्ट देवता अर्थात् परमात्मा के साथ सम्प्रयोग अर्थात् सांझा होता है फिर परमेश्वर के अनुग्रह का सहाय, अपने आत्मा की शुद्धि, सत्याचरण, पुरुषार्थ और प्रेम के सम्प्रयोग से जीव शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होता है। स्वाध्याय के सम्बन्ध में महर्षि याज्ञवल्क्य तो बहुत ऊँची बात कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में ऋषि लिखते हैं- ''**यन्ति वा आप एति आदित्यः एति चन्द्रमा यन्ति नक्षत्राणि यथा ह वा एता देवता नेयुर्न कुर्युः। एवं ह वै तत् अहः ब्राह्मणो भवति यत अहः स्वाध्यायो नाधीते। तस्मात् स्वाध्यायो अध्येतव्यः।**'' (१५.५.८.१०) भाव यह है- पानी बह रहे है, सूर्य, चन्द्रमा व नक्षत्र गति कर रहे हैं। यदि ये सब

देवता गति छोड़ दें तो जैसा विनाश होगा, उससे भी बड़ा विनाश उस दिन ब्राह्मण का है, जिस दिन ब्राह्मण स्वाध्याय नहीं करता। इसलिए स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। एक स्थान पर आता है- **स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तत् हि ततः हि तपः।** अर्थात् मुद्गल के पुत्र नाक ऋषि स्वाध्याय के बारे में लिखते हैं- यही तप है, यही तप है। योग-साधना और स्वाध्याय का आपस में अन्योऽन्याश्रय संबन्ध है। बिना साधना के स्वाध्याय और बिना स्वाध्याय के योग-साधना सफल नहीं हो सकते। जहाँ योग व स्वाध्याय दोनों का संयोग होता है, वहाँ परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित हो जाता है अर्थात् वह व्यक्ति ईश्वर को पा लेता है। योगदर्शन के भाष्य में व्यास जी लिखते हैं-

स्वाध्यायात् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

संध्या क्यों और कब?- स्वाध्याय के महत्त्व और उपयोगिता के साथ उसकी फलश्री के बाद अब ब्रह्मयज्ञ के दूसरे अंग संध्योपासना के बारे में विचार करते हैं। संध्या शब्द **'ध्यै चिन्तायाम्'** धातु से **'सम्'** उपसर्गपूर्वक **'डुधाञ् धारणपोषणयोः'** धातु में सम् उपसर्ग लगाकर तथा **'षञ्ज् सङ्गे'** धातु के ज को ध होकर भी संध्या शब्द बनता है। संध्या शब्द का अर्थ प्रकट करते हुए महर्षि दयानन्द जी पञ्चमहायज्ञ विधि में लिखते हैं- **''संध्यायन्ति संध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा संध्या।''** अर्थात् भली-भाँति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाए परमेश्वर का जिससे वह संध्या। संध्या वह विधि है जिसके द्वारा परमेश्वर का भली-भाँति ध्यान किया जाता है। **'स्वाध्याय प्रतिष्ठायामिष्टदेवतासम्प्रयोगः'** के साथ संध्या के अर्थ को मिलाकर चिन्तन करें, तो महर्षि व्यास का कथन **'स्वाध्याय-योग-सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते'** को बहुत भली-भाँति समझा जा सकता है। इसे क्या कहें कि हमारे बड़े-बड़े वेदवेत्ता, ऋषिभक्त भी ब्रह्मयज्ञ के रहस्य को न जानकर इसे जीवन का अंग नहीं बना पाते। महर्षि दयानन्द ने संध्योपासना न करने वाले को कृतघ्न कहा है, उधर स्वाध्याय न करने वाले ब्राह्मण का कितना नुकसान होता है यह महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण में लिख चुके हैं। आत्म-कल्याण चाहने वाले सच्चे आर्य को नित्य नियम से स्वाध्याय व संध्योपासना ही नहीं, पाँचों यज्ञों का अनुष्ठान श्रद्धापूर्वक करना चाहिए। विज्ञानवादी यह तो बता देते हैं कि संसार कैसे बना, वे यह भी अनुमान लगा लेते हैं कि यह कब बना, मगर उनसे पूछा जाए कि यह क्यों बना तो उनके पास इसका कोई उत्तर नहीं। जब तक विज्ञान आत्मा-परमात्मा के चिन्तन तक नहीं पहुँचेगा तब तक वह इस क्यों के प्रश्न के बारे में उचित अनुमान भी नहीं लगा सकेगा। महर्षि पतञ्जलि जी हजारों साल पहले- **'भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'** सूत्र में इसका उत्तर लिख गए हैं। यह संसार हमारे भोग और अपवर्ग (मुक्ति) के लिये है। ये दोनों वस्तुएँ ईश्वराधीन हैं इसलिए हमें इनकी सिद्धि के लिए उस जगदीश्वर की स्तुति-प्रार्थनोपासना अवश्य करनी चाहिए।

अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि के इच्छुक जनों को संध्योपासनारूपी धर्म का निर्वहन अवश्य करना चाहिए। देखा जाता है कि राजनैतिक व सामाजिक दृष्टि से ऊँचे पदाधिकार व प्रतिष्ठा-प्राप्त पुरुष से जिस किसी का थोड़ा बहुत भी संबन्ध बन जाता है तो व्यक्ति के जीवन में एक नई चमक पैदा हो जाती है। किसी भी क्षेत्र में प्रतिष्ठित, शक्तिसम्पन्न पुरुष के साथ हमारे संबन्ध जितने गहरे होते हैं, उस क्षेत्र में हमारा जीवन भी उतने अंशों में उस पुरुष की समग्र प्रतिष्ठा व शक्तियों से अभिभूत हो उठता है। जहाँ-जहाँ तक उसकी प्रतिष्ठा, शक्ति व अधिकार प्रभावकारी होते हैं, वहाँ-वहाँ तक हमें भी उनका पूरा लाभ मिलता है। यह सिद्धान्त ईश्वरीय दृष्टि से उसके उपासकों पर भी लागू होता है। परमेश्वर के पद, प्रतिष्ठा, शक्ति, अधिकार व सर्वसामर्थ्य देश-काल आदि की दृष्टि से सर्वोच्च, सर्वकालिक व सार्वभौमिक हैं। संध्योपासना के द्वारा हम उससे जितना गहरा व घनिष्ट संबन्ध बना लेते हैं, उसके सर्वोच्च गुण-गौरव की झलक हमारे जीवन में उतनी ही गहरी व चमकदार होकर उभरती है और हमारा जीवन भी देश-काल आदि से ऊपर उठकर एक अमिट आभा से युक्त हो जाता है।

अब प्रश्न होता है- कैसे करें यह सब? योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जलि जी **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** सूत्र देकर स्पष्ट करते हैं कि जैसा जप करें वैसी ही आन्तरिक भावनाएँ

बनाएँ। यह सूत्र मन्त्रों के अर्थों को अन्त:करण की भावभूमि पर साकार करते हुए उन्हें आत्मसात करने की प्रेरणा करता है। ऐसा करके हम आत्मवित् हो जाते हैं, अन्यथा सामान्य ढंग से जाप व अभ्यास करनेवाले औपचारिक भक्त नारद की तरह शब्दवित् होकर ही भटकते रहते हैं। इस विषय में ऋषि लिखते हैं- ''जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही संध्योपासना किया करें।''(**सत्यार्थप्रकाश**) 'संध्योपासना एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करें'- (स.प्र. तृ. समु.) इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदादि सद्ग्रन्थों का मनोयोग से स्वाध्याय करते हुए, परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर संध्या मन्त्रों का अर्थ-विचार करते हुए तन्मय भाव से संध्योपासना नित्यश: करनी चाहिए। महर्षि मनु तो यह व्यवस्था करते हैं कि जो प्रात:-सायं नित्य संध्या नहीं करते वे द्विज कर्मों से पतित होकर शूद्र माने जाते हैं। **बौधायन धर्मसूत्र**- २.४.२० में भी ऐसी ही व्यवस्था है। **दक्षस्मृति** में इसका कारण बताया-

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनार्ह: सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तेन फलवान् भवेत्।।

(२.२०)

भाव यह है कि संध्याहीन व्यक्ति अपवित्र होने के कारण किसी श्रेष्ठ कर्म के योग्य नहीं रहता। ऐसे में वह जो कुछ करता है, उसका फल शुभ नहीं होता। इसकी अर्थापत्ति लगाकर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि उचित विधि से संध्या करें तो इससे हमारी अपवित्रता नष्ट होती है और हमारे अन्दर श्रेष्ठ कर्म करने की योग्यता पैदा होती है। आज जबकि अविद्या, अपवित्रता, अत्याचार और ईर्ष्या-द्वेष आदि दुरितों ने मानव के हृदय को इतना कलुषित कर दिया है कि उसमें श्रेष्ठ कर्मों के प्रति न तो रुचि ही रही है और न उनके सुफल का भरोसा। ऐसे में संध्योपासना की ऋषि-प्रदत्त विधि मानवता के लिए संजीवनी का काम कर सकती है।

संध्योपासना कब करनी चाहिए- देखा यह जाता है कि अनुकूल परिस्थितियों में किया गया काम सरलता से भी हो जाता है, साथ ही बहुत अच्छे परिणामवाला भी होता है। ब्रह्मोपासना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय को हमारे ऋषियों ने ब्राह्ममुहूर्त अथवा अमृतवेला जैसा नाम दिया है। सूर्योदय से पूर्व का वह काल-खण्ड हमारी संध्योपासना की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। सामान्य भाषा में सूर्योदय और सूर्यास्त के समय को सन्धि-वेला कहा जाता है और यही समय संध्या के लिए उचित माना जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-''**संध्यौ संध्यामुपासीत् नास्तगे नोद्गते रवौ**,'' अर्थात् संध्या दिन-रात की सन्धिवेला में करें, सूर्य के उदय व अस्त-काल में संध्या सम्भव नहीं, इसलिए दिन और रात की जो सन्धिवेला होती है, वह संध्यावेला है। एक अन्य स्थान पर थोड़ा और खोलकर बताया है-

प्रात: संध्या सनक्षत्रमुपासीत् यथाविधि।
सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्धास्तमित भास्करे।।

(संवर्त)

अर्थात् प्रात:काल नक्षत्र रहते संध्या शुरू करे और सायंकाल तब करे जब सूर्य आधा अस्त हो गया हो। इस प्रकार प्राय: एक घण्टे का समय हमारे लिए निकल आता है, अधिक करें तो और अच्छा। तप: साधना में जीवन देने वाले हमारे ऋषि-मुनियों की अनुभवसिद्ध इस संध्योपासना की विधि को हमें अपने जीवन का अंग बना लेना चाहिए। हमारे ऋषियों के जीवन में जो महानता थी, उनके जीवन में जो लोक-कल्याण की भावना और उसके लिए अनन्य समर्पण था उन सबका मूल यह संध्या व स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) ही था। आत्म- कल्याण के इच्छुक मनुष्यमात्र के लिए यह ब्रह्मयज्ञ पहली आवश्यकता है। मनुष्यों द्वारा बनाए गए ग्रन्थों एवं उन पर आधारित आधी- अधूरी व अनर्गल उपासना-विधियों से ऊपर उठकर हमें चाहिए कि हम परमेश्वर के दिए हुए वेदज्ञान पर आधारित ऋषियों द्वारा श्रेष्ठतम रीति से तैयार की गई संध्योपासना विधि (ब्रह्म यज्ञ) का आश्रय लें। इस विधि से श्रद्धासहित निरन्तर अनुष्ठान करने से अवश्य सम्पूर्ण लाभ होगा। वेद कहता है- ''**नाऽन्य: पन्था विद्यते अयनाय**,'' अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति का और कोई रास्ता नहीं है। आओ उस परमेश्वर को उसी की बताई विधि के अनुसार प्राप्त करने का सच्चे हृदय से प्रयास करें। **य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते।।**

पुरोहित, आर्यसमाज, श्रीगंगानगर

परोपकार के पर्याय- आचार्य धर्मवीर

डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'

परोपकारिणी सभा के दिवंगत प्रधान आचार्य धर्मवीर जी कीर्तिशेष ही नहीं, हुतात्मा भी थे। वे दयानन्द के लिए जिये और दयानन्द के मिशन को पूरा करने की राह में ही उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। वे एक ऐसे विशाल वट-वृक्ष थे जिसकी छाया में न जाने कितने आर्य-वृन्द दयानन्द की दिग्विजयी पताका को थामने का संकल्प लेते थे। उनके आश्रय में सदैव एक सम्बल और सुरक्षा का अहसास बना रहता था कि देखो, ये दयानन्द की सेना में ऐसे सेनानी हैं, जो ''सवा लाख से एक लड़ाऊँ'' की तर्ज पर जूझने वाले अतुलित और मेधावी शूर हैं। ये जो संकल्प लेते हैं, उसे पूरा करके छोड़ते हैं और जिस वेदी पर ये आसीन होते हैं, वहाँ श्रुति-स्मृति की तर्कसम्मत वाग्धारा फूटती है। उसके श्रद्धालु श्रोता और अन्य तार्किक जन वेद-सरिता में निरन्तर स्नान कर नवीन दृष्टि और कर्त्तव्य-पथ पर चलने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उस सुविचक्षण वाग्मी की उपस्थिति में कोई भी दयानन्द और उसके मिशन के विरुद्ध प्रहार करने का साहस नहीं कर सकता था और यदि कर भी दिया तो तर्क-प्रमाणों-उद्धरणों की बाण-वर्षा से तुरन्त ही धराशायी भी हो जाता था। अपनी सुदृढ़ उक्तियों, बुद्धि-वैलक्ष्ण्य, शास्त्र-निष्णातता से प्रसूत धाराप्रवाह वक्तृत्वशैली और शिक्षासम्पन्न परिपक्व उच्चारणशक्ति के कारण अपने समकालीनों में अनुपम ऋषि-भक्ति से आप्यायित ये नरपुंगव विशालतम जनसम्मर्द में अपनी यश:पताका फहराने में समर्थ थे।

नश्वर देह का मोह त्यागे हुए विदेह बना यह तत्त्वदर्शी किन्हीं भी विपरीत परिस्थितियों में उत्तुंग हिमाचल-सा अविचलित रहने वाला था। कोई झंझा, कोई प्रलय-प्रवाह उन्हें कम्पित न कर सकती थी। महर्षि दयानन्द को सर्वात्मना समर्पित यह आचार्य पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द और महात्मा नारायण स्वामी इत्यादि से सुशोभित पंक्ति में विराजने-योग्य थे। कोई अभाव उनकी क्रियासिद्धि में व्यवधान नहीं बन सका। अपनी विद्वत्ता, अपनी तपश्चर्या और अपने निर्भीक सात्त्विक व्यवहार से उन्होंने सदैव सम्मुख आई बाधाओं को परे धकेला। कोई भी लक्ष्य उनके ऋषि-मिशन के लक्ष्य से बड़ा न हो सका। कोई मोह उनकी सिद्धियों को सम्मोहित न कर सका। अविद्या, अज्ञान, आलस्य, मोह, आकर्षण-विकर्षण और द्वन्द्वाघात उनके मिशन को रोकने में समर्थ न हो सका।

महात्मा भर्तृहरि ने कार्यसिद्धि मात्र को लक्ष्यैक मानने वाले मनस्वियों के बारे में कहा है-

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनम्।
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वाचित्कन्थाधारी क्वचिदपि दिव्याम्बरधरो।
मनस्वी कार्यार्थी गणयति दुःखं न च सुखम्।।

इस श्लोक का साक्षात् उदाहरण दयानन्दर्षि के दीवाने ये महामना आचार्य धर्मवीर जी थे। पारिवारिक सुख-सुविधा, महाविद्यालयीय सुस्थिर आजीविका, आदर्श पत्नी-सन्तानों के बीच उन्होंने ऋषि-भक्ति का कण्टकाकीर्ण पथ स्वयं वरण किया था। यह असिधाराव्रत धारण कराने वाला उनका उत्प्रेरक कोई नहीं था- ''**सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतम्।**'' जन्म-जन्मान्तरों की पुण्यराशि अर्जित आर्षमेधा को प्राप्त कर उन्होंने सांसारिक पदार्थों के प्रति मोह का विसर्जन कर दिया था। अपनी आत्मा के आवाहन पर ही वे दयानन्द के प्रभामण्डल से ज्योतित हुए थे। शास्त्राधीतता के परिणामस्वरूप ही वे ब्रह्म के सान्निध्य में विचरणशील हो सके थे।

श्रीमती परोपकारिणी सभा के प्रधान-पद पर अभिषिक्त होकर उन्होंने वास्तव में इस पद को धन्य किया। वे इस पद पर रहकर सभा के उद्दिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने को अपने जीवन की एकमात्र ऐसी उपलब्धि मानते थे, जो गर्व करने-योग्य थी। अपने कार्यों-व्यवहारों से वे एक मानक स्थापित कर गये। सभा के प्रति उनका समर्पण कुछ ऐसा ही था जैसा कि ऋषि के प्रति था। वे दयानन्द के स्वप्न-रूप इस उत्तराधिकारिणी सभा को सम्पूर्ण आर्यजगत् में प्रासंगिक बना गए। सभा के आह्वान को आर्य संसार में ध्यान से सुना जाने लगा। सभा के निर्णय आर्यजनों के

लिये उदाहरण बन गए। वे चाहते तो स्व-व्यक्तित्व से निर्मित इस कीर्ति का श्रेय वे स्वयं ले सकते थे, क्योंकि इसको उन्होंने अपने वैदुष्य, प्रतिभा, निष्ठा, तप और धर्मप्राणता से अर्जित किया- कराया था। यह सत्य है कि इन सबमें उनके वरिष्ठों ने उन्हें आशीर्वाद-सहित कार्य-स्वातन्त्र्य प्रदान किया था, सहयोगियों ने निरन्तर सहयोग किया था और अधीनस्थों तथा कनिष्ठों ने अपनी सेवाएँ दी थीं, परन्तु यदि धुरी के रूप में वह सबल और उत्तमों में उत्तम व्यक्तित्व और उत्प्रेरक ही न होता, तो सम्भवत: बिना सेनापति के सेना की-सी ही स्थिति होती।

'परोपकारी' पत्रिका की गूँज विश्वभर में फैलाने का श्रेय उन महामति आचार्य के सम्पादकीयों को जाता है। अनेक जन केवल इसलिए पत्रिका के ग्राहक बने कि आचार्य श्री की वैचारिक प्रखरता के प्रतीक 'सम्पादकीय' का रस-आस्वादन कर सकेंगे जिससे अनेक शंकाओं का निवारण होगा, दुविधाएँ समाप्त होंगी और प्रासंगिक परिस्थितियों एवं विषयों पर निर्णायक विचार-सरणि प्राप्त होगी।

अपने स्वाभिमान और आत्मज्ञान के कारण कभी किसी के आगे न झुकने वाले वह परोपकारिणी सभा के कार्यों में सहायता के लिए 'फकीरे-दयानन्द' बन जाते थे। सभा में किसी भी प्रकल्प/कार्य को धनाभाव में वह रुकने नहीं देते थे। ''हम तो भिक्षुक हैं, माँग लाएँगे'' यह उनका वाक्य अक्सर सुनाई देता था। आज कोई ऐसा दिखाई नहीं देता जो सिद्धान्तों के लिये व्यक्तिगत लाभ छोड़ समर्थ से बैर मोल ले, और उससे भिड़ सके। उन्होंने जहाँ बुराई या सिद्धान्तहीनता देखी उसी के विरुद्ध लिखा या कहा- चाहे वह व्यक्ति या संस्था कितनी ही बलशाली और समर्थ क्यों न हो, चाहे वह उनका प्रिय दानदाता ही क्यों न हो। जहाँ चाटुकारों की फौज खड़ी हो वहाँ अकेले आचार्य धर्मवीर का प्रतिवादी स्वर प्रखरता से उभरता था। ऋषि के चरित्र और सिद्धान्तों को पूर्णरूपेण आत्मसात् कर लेने के कारण उनमें यह विसंवादी एवं साहसी स्वर स्थायित्व प्राप्त कर सका था। जो विरोधी उनके इस स्वर को जानते थे, वे भी उनकी ईमानदारी के कारण उनका सम्मान करते थे।

गुरुजनों-वरिष्ठों को विनम्र व्यवहार से मोह लेने वाले, समवयस्कों से आदर व सहयोग प्राप्त करने वाले, वेदवेदांग-व्यसनी, दयानन्दपथानुयायी, नि:स्पृह, गृहस्थवेशधारी वैराग्यवान् संन्यासी, विविधशास्त्र निष्णात, वज्रादपि कठोर और पुष्प से भी कोमल हृदय वाले वे आचार्य धर्मवीर मात्र स्मृतिशेष में ही हमारे बीच रह गए।

आज की परोपकारिणी सभा, उसके प्रकल्पों और ऋषि-उद्यान के निर्माण के मानो वे शिल्पी थे। निस्सन्देह, वे यदि आज जीवित होते तो गुरुकुलों, गोशालाओं, अतिथिशालाओं, वेदप्रचारकों और चतुराश्रमस्थों का विशिष्ट सम्बल होते और महर्षि की उत्तराधिकारिणी सभा में हम वास्तव में ऋषि का आवेश अनुभव करते और अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु दूर तक जा चुके होते। सभा में जो प्रकल्प उनके नेतृत्व में प्रारम्भ किये गये, ऋषि-उद्यान में जिन भव्य एवं सुरम्य भवनों की निर्मिति हुई, जिन बटुकों और आचार्यों को आर्ष गुरुकुल में अपने विद्यादान से धन्य किया, जिन्होंने उनकी पीयूषवर्षिणी से वेद का गौरव गान सुना, जो उनसे मार्गदर्शन एवं प्रेरणा पाकर सत्पथगामी और परोपकारी बने, वे सब जन उनके स्मारक-तुल्य हैं। उन तपोधन आचार्य की स्मृति में अश्रुविगलित होना हमारी भावना है और उनके निर्दिष्ट पथ का अनुसरण करना हमारा कर्त्तव्य और पुरुषार्थ।

सदस्य, परोपकारिणी सभा

व्याख्यानमाला

परोपकारिणी सभा के भूतपूर्व प्रधान डॉ. धर्मवीर जी की तृतीय पुण्यस्मृति पर व्याख्यानमाला का तीसरा व्याख्यान दिनांक ०६ अक्टूबर २०१९ को आयोजित किया जायेगा। व्याख्यान का विषय '**महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य में वैज्ञानिकता**' होगा।

व्याख्यानकर्ता - डॉ. सुरेन्द्र कुमार, सम्पादक परोपकारी

शङ्का समाधान - ५६

डॉ. वेदपाल

शङ्का- ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १२३, मन्त्र ८ में तीस योजन आया है। इस मन्त्र में तीस योजन किस प्रकार लिया गया है?

-धनञ्जय यादव, आजमगढ़

समाधान- ऋग्वेद प्रथम मण्डल के सूक्त १२३ तथा १२४ का देवता 'उषा' है। दोनों सूक्तों के छब्बीस मन्त्र उषा का वर्णन करते हैं। 'उषस्' शब्द का अर्थ है- प्रभातीभाव। वाचस्पत्यम् के अनुसार-रात्रि का अवशिष्ट मुहूर्त्तात्मक काल।

एक स्थान पर उपलब्ध वर्णनानुसार पाँच घटी (२४ मिनट=एक घटी। अत: २४×५=१२० मिनट) अर्थात् दो घण्टे का काल उष: काल है। इस समय न तो नक्षत्र दिखाई देते हैं और सूर्योदय भी नहीं हुआ होता है। जिस-जिस भू प्रदेश पर सूर्य का प्रकाश पहुँचता है, उस-उस स्थान से आगे तीस योजन= एक सौ बीस कोस तक होने वाले प्रभातीभाव-प्रकाश का यहाँ निर्देश है।

अत: कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रकाश के आगे तीस योजन तक के भाग का उष: काल में रूप में वर्णन/निर्देश ही यहाँ अभिप्रेत है।

संस्था - समाचार

यज्ञ एवं प्रवचन- जैसा कि विदित है कि ऋषि उद्यान आर्यजगत् के उन स्थलों में से है, जहाँ पूरे वर्ष प्रतिदिन दोनों समय यज्ञ का अनुष्ठान अपरिहार्य रूप से किया जाता है। प्रात:काल यज्ञोपरान्त वेद के कुछ मन्त्रों का पाठ तथा महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य का स्वाध्याय किया जाता है तदनन्तर वेद, रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद् और दर्शनों आदि पर प्रवचन होते हैं। रविवार प्रात:काल विशेष यज्ञ किया जाता है, जिसमें नगर निवासी, आर्यसज्जन, माताएँ, बहनें और बच्चे सम्मिलित होते हैं और अपनी-अपनी आहुतियाँ प्रदान करते हैं। अतिथि यज्ञ के होता के रूप में दान देने वाले यजमान यदि ऋषि उद्यान में उपस्थित होते हैं तो उनके जन्मदिवस, वैवाहिक वर्षगाँठ, पुण्यतिथि एवं अन्य अवसरों से सम्बन्धित विशेष मन्त्रों से आहुति भी दिलवायी जाती है।

प्रात:कालीन प्रवचन के माध्यम से आचार्य घनश्याम, आचार्य श्यामलाल ने धर्मप्रेमी अतिथिगण व आश्रमवासी तथा गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का मार्गदर्शन किया। प्रात:काल रविवारीय के सत्संग में आचार्य चन्द्रेश ने बताया कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने परोपकारिणी सभा का परोपकारिणी नाम क्यों रखा? वैदिक सभा, विरजानन्द सभा ये नाम क्यों नहीं रखे? महर्षि दयानन्द ने परोपकारिणी सभा का नाम परोपकारिणी सभा इसलिए रखा कि वे पूरे संसार का उपकार करना चाहते थे न कि केवल भारत का। आर्यसमाज के छठे नियम में बताया गया है- संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

प्रत्येक व्यक्ति को सोने से पहले प्रतिदिन पाँच मिनट तक आँखें बन्द करके ध्यान करना चाहिए, अपने कार्यों को देखना चाहिए, मैंने आज क्या गलती की, उस गलती को दूर करने के लिए किसी बड़े व्यक्ति को बताना चाहिए, प्रतिदिन संचिका में लिखना चाहिये, प्रायश्चित करना चाहिए तथा आगे से न करने का संकल्प लेना चाहिए।

साहित्यकार सम्मेलन- आर्य लेखक परिषद् एवं परोपकारिणी सभा के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित साहित्यकार सम्मेलन ७-८ सितम्बर २०१९ को धूमधाम से मनाया गया। इस दो दिवसीय साहित्यकार सम्मेलन में पधारे सभी महानुभावों ने अपने-अपने विचार रखे। इस दो दिवसीय साहित्यकार सम्मेलन में विषयों में से एक विषय यह था कि देवनागरी लिपि को आगे कैसे बढ़ाया जाये। - **ब्र. प्रताप, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ सितम्बर २०१९ तक)

१. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटू २. श्री हरिसिंह ठाकुर, देवास ३. श्री रामदयाल गौतम, जयपुर ४. श्री सुदेश सेतिया, गुरुग्राम ५. स्वास्तिककॉम चैरिटेबल ट्रस्ट, अमरावती ६. श्री सुरेन्द्र कुमार, नई दिल्ली ७. श्रीमती सुयशा भास्कर सेन गुप्ता, अमेरिका ८. श्री आलोक आर्य, सिकंदराबाद ९. डॉ. प्रवीण माथुर, अजमेर १०. श्री राजेन्द्र माथुर, अजमेर ११. श्री प्रियव्रत आर्य, नई दिल्ली १२. श्रीमती सुवर्चा अंकुर भार्गव, मुम्बई १३. श्री. जे.पी. चतरथ, करनाल १४. श्रीमती सीमा सुधीर गुप्ता, बिलासपुर १५. श्रीमती यशोदा रानी सक्सेना, कोटा १६. श्री रमणलाल आर्य, बुरहानपुर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से १५ सितम्बर २०१९ तक)

१. श्री अग्नीत राजभण्डारी, जोधपुर २. श्री भैयालाल आर्य, कानपुर ३. श्री एस.के. कोली, दिल्ली ४. श्री विशाल मलिक, लखनऊ ५. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट ६. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली ७. श्री उदयचन्द पटेल, मैंगलोर ८. श्री सुदर्शन कुमार कपूर, पंचकुला ९. श्रीमती सुयशा भास्कर सेन गुप्ता, अमेरिका १०. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटू।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३६ वाँ ऋषि बलिदान समारोह
दिनांक १, २, ३ नवम्बर २०१९, शुक्र, शनि, रविवार

विराट् व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३६वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ- 'यजुर्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन ३ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. विनय विद्यालंकार-प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तराखण्ड होंगे।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **वेद वर्णित ईश्वर-स्वरूप एवं नाम (ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव)।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १० अक्टूबर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १, २, ३ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। २ नवम्बर को परीक्षा एवं ३ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १० अक्टूबर, २०१९ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तदनुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १३६वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकर्त्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान् एवं विशिष्ट अतिथि- आचार्य देवव्रत-महामहिम राज्यपाल गुजरात, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती-गुरुकुल गौतम नगर, देहली, स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती-मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र., श्री धर्मपाल आर्य-प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, श्री विनय आर्य-मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर, श्री सुरेश अग्रवाल-प्रधान सार्वदेशिक सभा, प्रो. सुरेन्द्र कुमार-पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, श्री तपेन्द्र वेदालंकार-(रि. आई.ए.एस.) जयपुर, आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि-झज्जर, श्री दीनदयाल गुप्त-कोलकाता, श्री शत्रुघ्न आर्य-राँची, श्री सत्यानन्द आर्य-दिल्ली, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, प्रो. महावीर अग्रवाल-पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, प्रो. कमलेश चौकसी-अहमदाबाद, डॉ. रामप्रकाश वर्णी-एटा, श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सज्जनसिंह कोठारी-पूर्व लोकायुक्त जयपुर, श्री विजयसिंह भाटी-जोधपुर, श्री इन्द्रजित् देव-यमुनानगर, आचार्य विद्यादेव, श्री पुनीत शास्त्री-मेरठ, आचार्य घनश्यामसिंह, आचार्य श्यामलाल, डॉ. रघुवीर वेदालंकार-दिल्ली, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, आचार्या सूर्या देवी-शिवगंज, आचार्य ओम्प्रकाश-आबूपर्वत, मा. रामपाल आर्य-प्रधान आ.प्र.स. हरियाणा, डॉ. महावीर मीमांसक-दिल्ली, श्री विजय शर्मा- भीलवाड़ा, डॉ. जगदेव-रोहतक, पं. रामनिवास गुणग्राहक-श्रीगंगानगर, श्री राजवीर आर्य, डॉ. मुमुक्षु आर्य-नोएडा, पं. सत्यपाल पथिक, पं. भूपेन्द्र सिंह, डॉ. उषा शर्मा 'उषस' आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

डॉ. वेदपाल — **कन्हैयालाल आर्य**

प्रधान — **मन्त्री**

वेदगोष्ठी–२०१९
विषय– वेद वर्णित ईश्वर–स्वरूप एवं नाम (ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव)
उपविषय

०१. ईश्वर के मुख्य निज नाम 'ओ३म्' तथा अन्य गौण नामों का वैशिष्ट्य और महत्त्व।
०२. महाव्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः) के आलोक में ईश्वर के स्वरूप की विवेचना।
०३. ईश्वर के सच्चिदानन्दस्वरूप की विवेचना।
०४. ईश्वर की 'सर्वशक्तिमत्ता' की विवेचना।
०५. ईश्वर के गुणों (निराकारत्व, दयालुता, न्यायकारित्व इत्यादि) का विवेचन।
०६. ईश्वर का कर्तृत्व-विवेचन।
०७. वेदों का उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर (शास्त्रयोनित्वात्)
०८. ज्ञान-विज्ञान का जनानेहारा आद्यगुरु परमेश्वर (स एष पूर्वेषामपि गुरु...)
०९. ईश्वर की सगुण-निर्गुणता का स्वरूप।
१०. प्रकृति व जीव से परमात्मा से पार्थ क्या।
११. भूत-भविष्य-वर्तमान का ज्ञाता परमेश्वर।
१२. ईश्वर की प्रतिमा, साकारत्व, अवतार इत्यादि की निषधक श्रुतिभेद की विवेचना।
१३. 'पुरुषसूक्त' में ईश्वर का स्वरूप।
१४. 'ईश्वरसिद्धि' की विवेचना।
१५. ईश्वर की महिमा, कर्म और स्वभाग।
१६. ईश्वर-प्राप्ति अर्थात् वेदोक्त ईश्वरोपासना।
१७. ईश्वर-प्राप्ति के उपाय/मार्ग-ज्ञान, कर्म, उपासना इत्यादि की विवेचना।

भूल-सुधार

परोपकारी के सितम्बर प्रथम २०१९ अंक में प्रकाशित लेख ''बचेगा कौन यदि राष्ट्र ही मर जाये?'' जिसके मूल लेखक श्री पी.के. चटर्जी हैं। यह लेख अंग्रेजी में who Lives if the Nation Dies? के नाम से प्रकाशित हुआ था। परोपकारी में प्रकाशित लेख इसका हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद का कार्य श्री चाँदरतन दम्मानी (कोलकाता) ने किया है। यह जानकारी लेख के साथ प्रकाशित नहीं हो पाई थी, इसके लिए खेद है। **- सम्पादक**

ऋषि मेला २०१९ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १, २, ३ नवम्बर शुक्र, शनि, रविवार २०१९ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नवम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। -**संपादक**

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

बड़ों की बड़ी बातें- ३१ अगस्त रात्रि समय बारह बजे के लगभग नींद खुल गई तो मन में कुछ चिन्तन-मनन करने लग गया। ऐसा करते हुये सन् १९५८ की एक शिक्षाप्रद और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना का स्मरण हो आया। परोपकारी के पाठकों व प्रबुद्ध देश बन्धुओं द्वारा सबके कल्याणार्थ इसे यहाँ देना उचित जाना। क्रान्तिवीर रामप्रसाद बिस्मिल ने फाँसी की कोठरी में अपनी आत्मकथा लिखकर जेल के देशप्रेमी कुछ कर्मचारियों के सहयोग से उसे प्रकाशनार्थ बाहर भेज दिया। प्रकाशित होते ही सरकार ने उसे जब्त कर लिया। २८ वर्ष पश्चात् सन् १९५७ में श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी के प्रयास से वह पुनः छप गई।

इसमें स्वामी सोमदेव जी की चर्चा करते हुये यह लिखा है कि लाहौर में स्वामी सोमदेव अपने मित्र श्रीयुत कृष्ण के पास ही ठहरा करते थे। वह श्रीयुत कृष्ण कौन थे? यह वीर बिस्मिल पर लिखने बोलने वाले किसी सज्जन को ध्यान नहीं आया। मैंने सन् १९५८ के वर्षा ऋतु में इस प्रसंग का उल्लेख करते हुये श्री महाशय कृष्ण जी को पत्र लिखकर पूछा, ''क्या यह श्रीयुत कृष्ण आप ही हैं अथवा लाहौर में इस नाम का कोई और भी आर्यसमाजी था?''

लौटती डाक मेरे पत्र का विस्तृत उत्तर मुझे मिल गया और दैनिक 'प्रताप' उर्दू में मेरे पत्र पर महाशय जी का ऐतिहासिक महत्त्व का सम्पादकीय भी आ गया। उस सम्पादकीय के आरम्भ में महाशय कृष्ण जी ने यह लिखा कि वीर बिस्मिल की आत्मकथा में मेरे नाम का भी उल्लेख है, मुझे तो इसका ज्ञान नहीं था, श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' के पत्र से मुझे यह पता चला है। महाशय जी ने 'प्रकाशित होते ही प्रतिबन्धित' यह पुस्तक देखी तक नहीं थी, परन्तु देश के सर्वाधिक प्रसार संख्या वाले उर्दू दैनिक में उर्दू पत्रकारिता के पितामह पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण यह वाक्य न भी लिखते तो इतने से ही काम चल सकता था कि श्रीयुत कृष्ण नाम का आर्यसमाजी तथा स्वामी सोमदेव जी का मित्र लाहौर में मैं ही था।

महाशय जी का बल देकर यह लिखना कि ''मुझे तो यह पता ही नहीं था कि महान् क्रान्तिकारी वीर बिस्मिल की आत्मकथा में मेरा नामोल्लेख है'' यह देश के प्रख्यात पत्रकार का बड़प्पन दर्शाता है। इसी को कहते हैं बड़ों की बड़ी बातें। महाशय जी का वह पत्र आज भी मेरे पास है। इसे मैं एक-दो पुस्तकों में छपवा चुका हूँ। महाशय जी के लेख का और मेरे नाम लिखे उनके पत्र का कई लेखकों ने सन्दर्भ दिये बिना इनका लाभ तो उठाया है, परन्तु अपनी जानकारी के स्रोत पर किसी ने एक शब्द तक नहीं लिखा। बड़ों के बड़प्पन की भी कोई सीमा नहीं होती और छोटों की तुच्छता का भी कहीं अन्त नहीं होता। यहाँ यह भी बता दें कि महाशय जी के उस पत्र में देश तथा आर्यसमाज के इतिहास विषयक और भी उपयोगी जानकारी है। आओ! बड़ों के बड़प्पन से कुछ सीखें।

रघुनाथ प्रसादजी पाठक का बड़प्पन- माननीय पाठक जी आर्यसमाज के एक सिद्धहस्त साहित्यकार तथा आर्यसमाज के इतिहास का एक प्रामाणिक स्रोत व जानकार थे। आपने 'सत्यार्थप्रकाश दर्पण' नाम से एक छोटी, परन्तु महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखकर इस सेवक की सम्मति प्राप्त करने के लिए मेरे पास भेजी। मैंने लौटती डाक उसकी विशेषताओं तथा उपयोगिता पर अपना मत लिखते हुये एक बहुत बड़ी चूक का भी संकेत कर दिया। उस पुस्तक में कहीं-कहीं और भी कुछ भूलें मिलीं, परन्तु उनके बारे उस सम्मति में कुछ विशेष नहीं लिखा था, यथा बिजनौर जनपद के श्री बहालसिंह का उल्लेख करते हुये बारह बार उनका नाम बहालसिंह की बजाय निहालसिंह लिखा मिला।

जिस चूक के बारे में लिखा वह यह थी कि सत्यार्थप्रकाश में कुरान की आयतों के अर्थ ऋषि द्वारा लिखी गई अप्रकाशित पुस्तक से उद्धृत नहीं किये गये। शाह रफ़ीउद्दीन के कुरान के किये अनुवाद से हैं। इसके लिये पं. लेखराम, स्वामी योगेन्द्रपाल, पं. चमूपति के प्रमाणों के साथ ऋषि की अनुभूमिका के शब्दों का तथा लाहौर के कोर्ट में ऐसा सिद्ध कर देने का संक्षिप्त वृत्तान्त भेजा। मेरा पत्र पाकर पाठक जी का पत्र आया कि आप कृपा करके इस पुस्तक को एक बार फिर पढ़कर और भी जो-जो भूलें पायें वे सब लिख भेजें ताकि अगला संस्करण निर्दोष छपे।

पाठक जी की कोटि के वरिष्ठ विद्वान् के ये शब्द

पढ़कर मैं दंग रह गया। यह बड़प्पन की पराकष्ठा थी। इसी को कहते हैं बड़ों का बड़प्पन। यह अपने ढंग की एक अनूठी घटना है। साथ ही यह लिखा कि आपकी सम्मति वाला पत्र एक नेता को पढ़वाया। वह बोले, ''देखो जिस चूक का आदरणीय महेश प्रसाद जी को भी पता न चला जिज्ञासु जी ने इतने प्रमाण देकर उसकी ओर ध्यान दिलाया है। श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक के पत्र की, उनके हृदय की उदारता, विशालता तथा बड़प्पन की रह-रह कर याद आती है तो उनको नमन करके आनन्द आता है। पाठक जी ने आने वाली पीढ़ियों के सामने एक आदर्श रखा है।''

उपाध्याय जी का बड़प्पन- पूज्य उपाध्यायजी ने सन् १९५५ के आस-पास अपनी पुस्तक 'धर्मसुधासार' पर सम्मति माँगी। मैं तो तब उनके लिये एक अनुभवहीन बालक था। मेरे प्रशिक्षण व निर्माण के लिये ऐसा किया जाता था। मैंने आज्ञा का पालन करते हुए पुस्तक की उपयोगिता, विशेषतायें लिखकर एक चूक का सुधार करने की विनती भी कर दी। चूक यह थी कि पण्डित लेखराम जी का हत्यारा उनके पास छः मार्च को नहीं आया था। वह तो १६ फरवरी को उनको खोजता-खोजता महात्मा हंसराज जी के पास भी गया था।

मेरा पत्र पाकर श्रद्धेय उपाध्याय जी ने लिखा, ''इसके अगले संस्करण में इसमें जो-जो संशोधन, परिवर्द्धन करना है- वह आप जैसे चाहे कर देना।''

उपाध्याय जी को कोटि के लेखनी सम्राट, साहित्य पिता के इन शब्दों पर- उनके इस बड़प्पन पर कुछ लिख पाने में मैं अक्षम हूँ। उनके प्रति अपने उद्‌गार कैसे व्यक्त करूँ? यह समझ में नहीं आता। आर्यजनता अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित मर्यादाओं से कुछ सीखे, कुछ समझें।

गणेश अनादि है?- दैनिक भास्कर के दो सितम्बर २०१९ के पृष्ठ तीन (फ़ाजिल्का अबोहर परिशिष्ट) में एक लेख छपा है। लेखक कौन है? यह नहीं बताया गया। इसका मुख्य शीर्षक ही 'गणेश अनादि है' के साथ लिखा है 'वे दुनिया भर में ५००० वर्ष पहले से ही पूजे जा रहे हैं। लेखक ने कई गोरे विदेशी लेखकों की पुस्तकों के प्रमाण दिये हैं। अन्धविश्वासों को खाद पानी देने वाले लेख तो पहले भी छपते रहते थे। भाजपा के सत्ता में आने पर देशहित के कई प्रशंसनीय कार्य तो हुये हैं, परन्तु सत्ताधारी अन्धविश्वासों को पूरी शक्ति से बढ़ावा दे रहे हैं। इनके भाषण, घोषणायें इनके परस्पर विरोधी विचारों का अच्छा प्रमाण हैं, परन्तु लीडरों को सत्यासत्य के निर्णय से क्या लेना देना।'

१. गणेश की उत्पत्ति पार्वती द्वारा मैल से हुई, यह इनकी मान्यता है। जिसकी उत्पत्ति यह मानते हैं, वह अनादि कैसे? अनादि शब्द का अर्थ इन्हें कौन बतावे? पार्वती पहले थी, शिवजी भी थे, हाथी भी पहले से था और मूषक भी था फिर गणेश को अनादि बताना हिन्दू समाज का उपहास उड़ाना, उन्हें मूर्ख बनाना, धर्म-दर्शन का अपमान नहीं तो क्या है?

२. अभी-अभी हरियाणा के मुख्यमन्त्री खट्टर जी कहीं विदेश में गीता पर कुछ लच्छेदार बातें बोलकर आये हैं। उन्होंने आज पर्यन्त गीता से ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया कि ईश्वर, जीव तथा प्रकृति के साथ गणेश भी अनादि है। मोदी जी ने भी अभी विदेश में श्रीकृष्ण की चर्चा की। आपने भी कभी गणेश जी को अनादि नहीं बताया। कार्टून तो एक बार बताया था। यह हमने भी सुना व पढ़ा था।

३. सत्ताधारी स्वामी विवेकानन्द जी की चर्चा करना अपना परमधर्म मानते हैं। विवेकानन्द जी ने और मैक्समूलर ने एक-दूसरे की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसी मैक्समूलर ने My Indian Friends नाम की अपनी अन्तिम पुस्तक में संस्कृत के विद्वान् महाराष्ट्र के ब्राह्मण पादरी नीलकण्ठ शास्त्री की आड़ लेकर गणेश पूजा (शिवलिंग उपासना) की घोर निन्दा की है। इसी घृणित उपासना तथा गोपियों के वस्त्र... कहानियों को पढ़कर नीलकण्ठ को हिन्दू धर्म से घृणा हो गई और वह ईसाई बन गया। स्वामी विवेकानन्द जी श्रीकृष्ण जी की निन्दा व गणेश जी के अपमान पर कुछ बोले ही नहीं। उनके मौन का कारण हमें समझ नहीं आया। श्रीकृष्ण के व हिन्दुओं के अपमान पर कोई तड़प उठा तो वह थे महात्मा मुंशीराम और उनकी शिष्य परम्परा। मैक्समूलर की पोल खोलने में और श्रीकृष्ण की लुटती लाज बचाने में 'परोपकारी' तथा 'वेदप्रकाश' में हम निरन्तर लिखते चले आ रहे हैं।

४. मैक्समूलर ने हमारे धर्म को, अनादि वेदज्ञान को लगभग ४००० वर्ष पुराना बताया। उसी की बोली नेहरू बोलते रहे और अब मोदी जी भी युगों की बात न करके चार सहस्त्र वर्ष की सभ्यता की रट लगा रहे हैं। भास्कर के

लेख में पाँच सहस्त्र वर्ष बताया है। चलो कुछ तो आगे सरके।

५. हमारे किसी प्रामाणिक धर्मग्रन्थ वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा छः दर्शनों में कहीं भी गणपति बप्पा को अनादि नहीं बताया गया। किसी के पास इसका कोई प्रमाण हो तो चुनौती स्वीकार कर ऋषि मेला पर आकर सत्यासत्य का निर्णय कर लें।

६. विज्ञान के, धर्म और दर्शन के अनुभवी प्रवक्ता डॉ. सत्यपाल द्वारा डार्विन मत का खण्डन करने पर एक केन्द्रीय मन्त्री भड़क उठे। डार्विन मत का खण्डन बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, डार्विन के वैज्ञानिक पुत्र ने भी किया है, परन्तु सत्यपाल जी को डार्विन मत का खण्डन न करने का दण्ड तत्काल उस केन्द्रीय मन्त्री ने सुना दिया। हमें लगा कि अब वही प्रधानमन्त्री होने वाले हैं। 'गणेश अनादि है' इस कथन पर वह श्रीमान् चुप बैठे हैं। अब वह नहीं बोल रहे। वेद, उपनिषद्, दर्शन का अपमान सहना क्या परम धर्म है?

मैक्समूलर की वास्तविकता और उसकी 'अमृतवर्षा!'- सन् १८९७ में अमेरिका से एक पठनीय पुस्तक ' Swami Vivekananda and His Guru' का ईसाइयों ने लन्दन व भारत से भी एक संस्करण निकाला था। हमारे मन में कई बार इसकी शव-परीक्षा करने का विचार आया, परन्तु हर बार इस विचार को हम टालते ही रहे। इस विचार को टालने का एक मुख्य कारण यह रहा कि जिन्हें इस पर कुछ लिखना बोलना चाहिये था जब वही इस पर चुप्पी साधे बैठे हैं तो आपको इस विषय से क्या लेना देना!

फिर इसकी आर्य जाति (हिन्दू समाज) के लिये कुछ घातक पंक्तियाँ पढ़कर श्री यशवन्त सिंह वर्मा टोहानवी के एक प्रसिद्ध गीत की महात्मा बेधड़क स्वामी जी आर्य संन्यासी के मुख से सुनीं ये भावपूर्ण पंक्तियाँ हमें झकझोरती रहीं-

जहाँ पर होय तुम्हारी हान। (हानि)
वहाँ पर देता अपनी जान।।
आओ रे हिन्दुओ बतायें तुम्हें।
क्या है आर्यसमाज...

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवनकाल में यह पुस्तक छपी। आपने अथवा आपके रामकृष्ण मिशन के किसी भी व्यक्ति ने इसके प्रतिवाद में कुछ लिखा हो, यह हमारे पढ़ने-सुनने में तो आया नहीं। ऐसा तो हो नहीं सकता कि जब यह पुस्तक मद्रास से भी छपी हो तो विश्व हिन्दू परिषद् के श्री अशोक सिंघल कन्याकुमारी तक घूम आये और उनको इसका पता ही न चला।

इस पुस्तक में मैक्समूलर का बड़ा सुन्दर चित्र दिया गया है। मद्रास के ब्राह्मणों ने मैक्समूलर के रुग्ण होने पर बड़ी मोटी दक्षिणा व भेंट का प्रलोभन देकर एक ऐतिहासिक मन्दिर के पाषाण देवता से उसके स्वास्थ्य लाभ तथा दीर्घजीवी होने की प्रार्थना तक करवाई। मैक्समूलर घातक बताये जाने वाले रोग से तब धन्यवाद देने के लिये तो बच गया, परन्तु कुछ ही दिन में चल बसा। इससे पत्थर के भगवान् के आशीर्वाद की पोल खुल गई।

आश्चर्य का विषय है कि मैक्समूलर के मद्रासी ब्राह्मण भक्तों ने भी इस पुस्तक के मैक्समूलर प्रकरण पर आज तक कुछ नहीं लिखा। धर्मशास्त्रों की निन्दा करने व उपहास उड़ाने का उत्तर देना तो वे सीखे ही नहीं थे। इस पुस्तक में लिखा है कि मैक्समूलर के दो रूप हैं- " In his intercourse with everyone he seeks to be as pleasant as possible. It should however be remembered that he has " Two Voices. By listening only to one of them, a very erroneous conclusion may be drawn. The professor's provision must also be taken into account."

विश्वास मत करें- लेखक का भाव स्पष्ट है कि दो मुँह वाले अथवा दोहरी बातें करने वाले मैक्समूलर की मीठी-मीठी बातों पर विश्वास मत कीजिये। उसके दूसरे रूप को भी ध्यान में रखकर उसके बारे निर्णय लें।

मैक्समूलर की ''अमृतवाणी'' पढ़िये। I spend my happy hours in reading Vedantic books. They are to me like light of the morning, like the pure air of the mountains-so simple, so true, if one understood."

नवीन वेदान्त और अद्वैतवाद की प्रशंसा के इन शब्दों में पुल बाँधने वाला मैक्समूलर आगे लिखता है- " He destroys Shankara's system of Duality."

He seems to regard as blasphemous and doctrine of Shankara- the identity of Brahma and the individual self or soul." अर्थात्... शंकराचार्य के अद्वैतवाद को ध्वस्त करता है। वह जीव ब्रह्म की एकता (अद्वैतवाद) को ईश निन्दा मानता है।

इससे वेदान्त फ़िलॉसफी पर उसके व्याख्यानों से ये शब्द उद्धृत करना लाभप्रद होगा। " I Know I have often been blamed for calling rubbish what to the Indian seemed to contain profound wisdom and to deserve the highest respect.... still it cannot be denied that the same stream which carries down fragments of pure gold carries the sand and mud and much that is dead and offensive."

कूड़ा कचरा!- हम यहाँ मैक्समूलर के ऐसे और कथनों को उद्धृत करके किसी का मन दुखाना नहीं चाहते। वह स्वयं स्वीकार करता है कि मैं जानता हूँ कि जिसे भारतीय विचारक गहन सद्ज्ञान और सर्वोच्च सम्मान योग्य सत्य मानते हैं उसको मैं कूड़ा-कचरा, निरर्थक मानता हूँ। ऐसा मुझ पर दोष लगाया जाता है। तथापि इसको झुठलाया नहीं जा सकता कि पूर्व के पवित्र धर्मग्रन्थ कूड़ा करकट से भरे पड़े हैं और वही नदी जल जिसमें शुद्ध स्वर्ण कण बह रहे हैं उसमें रेत, कीचड़, गारा तथा बहुत कुछ मृतकों शवों की सड़ाँध भी है।

वह सारी सीमायें लाँघ गया- हम मैक्समूलर के साहित्य का जितना भी परिचय प्राप्त करते हैं हमें तो ऐसा लगता है कि वह भारतीयों को मूर्ख बनाने की व भ्रमित करने की कला में सिद्धहस्त था। उसका एक ही उद्देश्य था, साम्राज्य की जड़ों को गहरा करना तथा हिन्दुओं को ईसाई बनाना है। उसके मन में वेद-शास्त्र का कतई मान-सम्मान नहीं था। वह शंकराचार्य की तो खुलकर धज्जियाँ यहाँ उड़ा ही रहा है। वह स्वामी विवेकानन्द जी और उनके गुरु का कितना व कैसा प्रशंसक था, यह अब उन्हीं को बताना होगा। आर्य धर्म का, आर्य जाति का और हमारे पूर्वजों का घोर अपमान करता है। उसने उपनिषदों पर प्रहार करते हुये सब सीमायें लाँघ कर लिखा है, " These works deserve to be studied as the physician studies the twaddle of idiots and the craving of madness." वह लिखता है कि जैसे वैद्य डॉक्टर पागलों की, उन्माद रोगियों की बकवाद व प्रलाप का अध्ययन करते हैं ऐसे ही उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण की रट लगाने वाले आज पर्यन्त इस बकवाद पर मौन रहे। यह भी कैसा चमत्कार है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी का एक ऐतिहासिक पत्र- रक्तसाक्षी पं. लेखराम आर्यसमाज की पहली विभूति थे जिन्होंने आर्य सामाजिक साहित्य में पत्रों के महत्त्व को समझकर उनकी खोज तथा संग्रह के आन्दोलन को तो आरम्भ किया ही- ऋषि जीवन में महर्षि के पत्र उद्धृत करके आर्य सामाजिक साहित्य ही नहीं प्रत्युत हिन्दी में पत्र साहित्य की विद्या का बीज बोया। महाशय कृष्ण, महात्मा नारायण स्वामी, महात्मा मुंशीराम, महाकवि शङ्कर आदि ने इसको आन्दोलन का रूप दिया। आगे चलकर पं. चमूपति, पं. भगवद्दत्त, पूज्य मीमांसक जी, पं. लक्ष्मण जी, डॉ. वेदपाल जी, डॉ. धर्मवीर, मान्य पं. विरजानन्द तथा राजेन्द्र जिज्ञासु तक आर्यसमाज में ऋषि के पत्र-व्यवहार पर सतत साधना करने वालों की एक अखण्ड परम्परा आर्यमात्र के लिये गौरव का विषय है।

इस सेवक ने अनेक आर्य विद्वानों, महापुरुषों के पत्रों को सुरक्षित करके आर्यसमाज के यश में अक्षय वृद्धि की है।आज परोपकारिणी सभा के एक पूर्व प्रधान, आर्य नेता और संन्यासी के एक ऐतिहासिक पत्र के छायाचित्र को देकर उस पत्र पर संक्षेप से कुछ निवेदन किया जावेगा। यह पत्र आर्यसमाज के इतिहास के एक स्वर्णिम अध्याय का मूल्यवान् document दस्तावेज है। हमें चिन्ता सताने लगी कि यह पत्र हमसे खो गया है।

सौभाग्य से महात्मा जी का १६-१२-१९७२ का लिखा यह पत्र हमें मिल गया है। यह महर्षि के विषपान अमर बलिदान विषय पर आपने इस सेवक को लिखा था। तब इस घटना को झुठलाने के लिये प्रिं. श्रीराम आर्य के विषैले प्रचार का प्रतिवाद करने के लिये यह विनीत लेख पर लेख लिखकर अलभ्य प्रमाणों से इतिहास की सुरक्षा के लिये जी-जान से जुटा था। महात्मा जी ने दिल्ली के दैनिक प्रताप में मेरा धारदार खोजपूर्ण लेख पढ़कर मेरे

लेख की पुष्टि करते हुए एक दैनिक में एक प्रभावशाली लेख में श्रीराम शर्मा को इस दुष्कृत्य के लिये फटकार भी लगाई, फिर मेरे नाम लिखे इस पत्र में भी श्रीराम शर्मा को इतिहास -प्रदूषण के लिये लताड़ लगाई कि इसे अब पिछली बेला में कपोलकल्पित ऋषि जीवन लिखने की सूझी। इन आज पर्यन्त तो आर्यसिद्धान्तों और ऋषि-जीवन की महिमा पर आर्यसमाज के बलिदानों के गौरव पर कभी एक ट्रैक्ट तक नहीं लिखा। अब इसे रिसर्च के नाम पर यह क्या सूझा।

मेरे लेखों के व्यापक प्रभाव से घबराकर उसने डी.ए.वी. कॉलेज कमेटी में अपने प्रभाव की धौंस जमाने के लिये प्राचार्य ग्रोवर जी को एक पत्र लिखकर मुझ पर दबाव बनाने का निकृष्ट कर्म किया। प्राचार्य ग्रोवर ने मुझे बुला लिया। मैंने कहा, इससे कॉलेज का क्या लेना-देना? यह मेरी मान्यताओं का प्रश्न है। महात्मा आनन्द स्वामी जी के इस पत्र की, उनके लेख की चर्चा की। यह भी कहा कि स्वामी सर्वानन्द जी, ज्ञानी पिण्डीदास, पं. नरेन्द्र जी सारा आर्यजगत् मेरी पीठ पर है। मेरे पीछे हटने, दबने, डरने का प्रश्न ही नहीं।

उत्तर- प्राचार्य ग्रोवर ने महात्माजी के पत्र की प्रतिलिपि उसे भेज दी। उसने सटपटाकर महात्मा जी के विरुद्ध जल भुनकर बहुत कुछ लिखा। वह अजमेर 'परोपकारी' मासिक में मेरे लेखों के प्रतिवाद के लिये लेख देने गया। सम्पादक पं. भगवानस्वरूप जी ने कहा, ''हमारी सभा के प्रधान महात्मा आनन्द स्वामी जी ऋषि-जीवन की रक्षा में श्री 'जिज्ञासु' जी का समर्थन कर चुके हैं। सभा उनके साथ है। आपका लेख परोपकारी में नहीं छपेगा।''

महात्मा आनन्द स्वामी जी द्वारा ऋषि जीवन की रक्षा के आन्दोलन में दृढ़तापूर्वक आगे आने से श्रीराम शर्मा की कुचालें विफल हो गईं। महात्मा जी ने मुझे Illustrated Weekly में भी लेख देने को कहा। उसका सम्पादक आर्यसमाज द्वेषी था सो हमने लेख न भेजा। इस आन्दोलन को सफल बनाने में महात्मा जी के ऐतिहासिक योगदान के प्रमाणस्वरूप हमने संक्षेप से ये पंक्तियाँ लिखी हैं। आर्यसमाज तथा परोपकारिणी सभा के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला महात्मा जी का यह पत्र एक दुर्लभ दस्तावेज सदा के लिये अब सुरक्षित हो जावेगा। महात्मा जी की जीवनी भी इसके बिना अधूरी ही है।

शोर, उछल-कूद तथा ईश्वरेतर पूजा!- देश भर में योग दिवस मनाने तथा योगविद्या का गुणकीर्तन करने में नेताओं तथा योगियों में होड़ सी लगी है। ऋषियों का कथन है कि ध्यान तो मन के विषय-रहित होने को समझना । गणपति को बिठाने तथा बहाने, डुबोने (विसर्जन) पर देश भर में उछल-कूद व शोर के दृश्य टी.वी. में देखे। यह तो न ईशोपासना थी और न वेद शास्त्र, गीता सम्मात योग था। पता नहीं मिठाई, नारियल, चूड़ियों, चॉकलेट व किस-किसके गणेश बनाये गये! मैल से किसी ने गणेश बनाया हो, ऐसा तो एक भी समाचार नहीं सुना गया। योग तो सर्वव्यापक ईश्वर से जुड़ने को माना जाता था। सर्वज्ञ सर्वव्यापक का किसी समारोह में किसी ने नाम तक न लिया।

देश भर में ऊँची से ऊँची मूर्तियाँ बनाकर अपने-अपने भगवान् को ऊँचा उठाने के प्रयोग हो रहे हैं। मूर्तियों के भञ्जन के इतिहास से हिन्दू ने क्या सीखा? अयोध्या के केस की सुनवाई मूर्तिपूजा की निरर्थकता की पोल का एक दु:खद ज्वलन्त प्रमाण बनने वाला है। कामनायें पूरी करने वाले किसी देवी देवता ने न राम मन्दिर बनवाया और न कश्मीर बचाया, न हिन्दू का ह्रास रोका। पाकिस्तान से प्रकाशित कुरान भाष्य में पीर पूजा, कब्र पूजा आदि को ईश्वरेतर होने से कुफ्र माना है। यह था केवल आर्यसमाज के एकेश्वरवाद का प्रभाव। अब देशभर में नये-नये भगवानों व बहुदेवतावाद तथा मूर्तिपूजा के अड्डे चल रहे हैं। जड़ पूजा की जड़ें हिलाकर एकेश्वरवाद की लहर चलाने वाले सहस्र साहसी युवक आगे आयें।

कश्मीर में शान्ति- कश्मीर में पत्थरबाजी, आतंकवाद, हत्यायें, लूटपाट को समाप्त करने पर प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी तथा श्री अमित शाह को बधाई। राहुल बेचारा व्याकुल, निराश है कि उसको कश्मीर के उपद्रवियों की स्वच्छन्दता का झण्डा उठाने का अवसर नहीं मिल रहा। लाखों कश्मीरी हिन्दू वहाँ से निकाले गये। नेहरू परिवार ने उनके लिये दो शब्द न कहे। वैसे वे चुप रहते नहीं। सरकार की भूल को भूल कहने और अच्छे कामों का सरकार को श्रेय देना नेहरू परिवार के बस की बात नहीं। महबूबा मुफ्ती को भाजपा ने कहीं से खोजकर मुख्यमन्त्री बनाने की भूल ही नहीं, पाप किया। ऐसी भयङ्कर भूलों से सरकार को बचना चाहिये।